ISSN 2455 – 4502

वर्ष-1 अंक – 4

नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कर्वेजयति

निमित्त

विश्वविद्यालय परिसर की रचनात्मक अभिव्यक्ति का समवेत प्रयास

त्रैमासिक ई-पत्रिका

निमित्त मात्रं भव!

ज्ञान शांति मैत्री

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

नैक द्वारा ‘A’ ग्रेड प्राप्त

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

पोस्ट – हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा – 442001 (महाराष्ट्र)

संरक्षक

प्रो. गिरीश्वर मिश्र

कुलपति

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)

परामर्श

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मिश्र

कुलसचिव

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)

संयोजन-संपादन

डॉ. शंभू जोशी

सहायक प्रोफेसर

गिरीश चंद्र पाण्डेय

प्रभारी, लीला

रचना भेजने का पता - nimitta@hindivishwa.org

आवरण एवं साज-सज्जा

श्री पवन कुमार

निजी सचिव, प्रतिकुलपति कार्यालय

© संबंधितलेखकों एवं रचनाकारों द्वारा सुरक्षित

प्रकाशक

कुलसचिव

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा- 442001 (महाराष्ट्र)

नोट- प्रकाशित रचनाओं की रीतिनीति या विचारों से महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा या संयोजक-संपादकों की सहमति अनिवार्य नहीं है।

अनुक्रम

विरासत	
कहानी	
गेहूँ और गुलाब	: रामवृक्ष बेनीपुरी
निबंध	
कला और नीति	: इलाचन्द्र जोशी
अतिथि	
कहानी	
तोता सुकुल	: अरूणेश नीरन
संस्मरण	
नींव के पत्थर	: सूर्यनारायण रणसुभे
काकासाहब की अंतिम यात्रा	: उल्लास जाजू
पुस्तक समीक्षा	
अमरत्व की तलाश	: उल्लास जाजू
आलेख	
हिंदी में मिश्रक्रिया	: अनिल कुमार पाण्डेय
चेन्नई बाढ़ की विभीषिका	: दीपमाला
योग-शिक्षा के सरोकार	: नीतू सिंह
कविताएं	
तुमने ये क्या किया ?	: रेणु कुमारी
एक तस्वीर बचपन की	: वैभव कुमार
हिंदी भारत मां की बिंदं	: वेद भूषण
वे दिन...	: कृष्ण मोहन
शाना ब शाना...	: नीतीश कुमार भारद्वाज
मैं हूँ जली हुई...	: मेघा आचार्य
मैं फुटपाथ हूँ	: कुमार गौरव
क्योंकि मैं एक औरत हूँ	: नेहा नेमा
हिन्दी साहित्य	: नवल पाल प्रभाकर
हमारा जीवन	
गतिविधियाँ	

कहानी

गेहूँ बनाम गुलाब

रामवृक्ष बेनीपुरी

गेहूँ हम खाते हैं, गुलाब सूँघते हैं। एक से शरीर की पुष्टि होती है, दूसरे से मानस तृप्तहोता है।

गेहूँ बड़ा या गुलाब? हम क्या चाहते हैं - पुष्टशरीर या तृप्त मानस? या पुष्टशरीर पर तृप्त मानस?

जब मानव पृथ्वी पर आया, भूख लेकर। क्षुधा, क्षुधा, पिपासा, पिपासा। क्या खाए, क्या पिए? माँ के स्तनों को निचोड़ा, वृक्षों को झकझोरा, कीट-पतंग, पशु-पक्षी - कुछ न छुट पाए उससे !

गेहूँ - उसकी भूख का काफला आज गेहूँ पर टूट पड़ा है? गेहूँ उपजाओ, गेहूँ उपजाओ, गेहूँ उपजाओ !

मैदान जोते जा रहे हैं, बाग उजाड़े जा रहे हैं - गेहूँ के लिए।

बेचारा गुलाब - भरी जवानी में सिसकियाँ ले रहा है। शरीर की आवश्यकता ने मानसिक वृत्तियों को कहीं कोने में डाल रक्खा है, दबा रक्खा है।

किंतु, चाहे कच्चा चरे या पकाकर खाए - गेहूँ तक पशु और मानव में क्या अंतर? मानव को मानव बनाया गुलाब ने! मानव मानव तब बना जब उसने शरीर की आवश्यकताओं पर मानसिक वृत्तियों को तरजीह दी।

यही नहीं, जब उसकी भूख खाँव-खाँव कर रही थी तब भी उसकी आँखें गुलाब पर टँगी थीं।

उसका प्रथम संगीत निकला, जब उसकी कामिनियाँ गेहूँ को ऊखल और चक्की में पीस-कूट रही थीं। पशुओं को मारकर, खाकर ही वह तृप्त नहीं हुआ, उनकी खाल का बनाया ढोल और उनकी सींग की बनाई तुरही। मछली मारने के लिए जब वह अपनी नाव में पतवार का पंख लगाकर जल पर उड़ा जा रहा था, तब उसके छप-छप में उसने ताल पाया, तराने छोड़े ! बाँस से उसने लाठी ही नहीं बनाई, वंशी भी बनाई।

रात का काला-घुप्प परदा दूर हुआ, तब यह उच्छवसित हुआ सिर्फ इसलिए नहीं कि अब पेट-पूजा की समिधा जुटाने में उसे सहूलियत मिलेगी, बल्कि वह आनंद-विभोर हुआ, उषा की लालिमा से, उगते सूरज की शनैः शनैः प्रस्फुटित होनेवाली सुनहली

किरणों से, पृथ्वी पर चम-चम करते लक्ष-लक्ष ओसकणों से! आसमान में जब बादल उमड़े तब उनमें अपनी कृषि का आरोप करके ही वह प्रसन्न नहीं हुआ। उनके सौन्दर्य-बोध ने उसके मन-मोर को नाच उठने के लिए लाचार किया, इन्द्रधनुष ने उसके हृदय को भी इन्द्रधनुषी रंगों में रँग दिया!

मानव-शरीर में पेट का स्थान नीचे है, हृदय का ऊपर और मस्तिष्क का सबसे ऊपर। पशुओं की तरह उसका पेट और मानस समानांतर रेखा में नहीं है। जिस दिन वह सीधे तनकर खड़ा हुआ, मानस ने उसके पेट पर विजय की घोषणा की।

गेहूँ की आवश्यकता उसे है, किंतु उसकी चेष्टा रही है गेहूँ पर विजय प्राप्त करने की। उपवास, व्रत, तपस्या आदि उसी चेष्टा के भिन्न-भिन्न रूप रहे हैं।

जब तक मानव के जीवन में गेहूँ और गुलाब का सम-तुलन रहा वह सुखी रहा, आनंदमय रहा !

वह कमाता हुआ गाता था और गाता हुआ कमाता था। उसके श्रम के साथ संगीत बँधा हुआ था और संगीत के साथ श्रम।

उसका साँवला दिन में गायें चराता था, रात में रास रचाता था।

पृथ्वी पर चलता हुआ वह आकाश को नहीं भूला था और जब आकाश पर उसकी नजरें गड़ी थीं, उसे याद था कि उसके पैर मिट्टी पर हैं।

किंतु धीरे-धीरे यह सम-तुलन टूटा।

अब गेहूँ प्रतीक बन गया हड्डी तोड़नेवाले, उबानेवाले, थकानेवाले, नारकीय यंत्रणाएँ देनेवाले श्रम का - वह श्रम, जो पेट की क्षुधा भी अच्छी तरह शांत न कर सके।

और गुलाब बन गया प्रतीक विलासिता का - भ्रष्टाचार का, गंदगी और गलीज का। वह विलासिता - जो शरीर को नष्ट करती है और मानस को भी !

अब उसके साँवले ने हाथ में शंख और चक्र लिए। नतीजा - महाभारत और यदुवंशियों का सर्वनाश !

वह परंपरा चली आ रही है। आज चारों ओर महाभारत है, गृहयुद्ध है, सर्वनाश है, महानाश है!

गेहूँ सिर धुन रहा है खेतों में, गुलाब रो रहा है बगीचों में - दोनों अपने-अपने पालन-कर्ताओं के भाग्य पर, दुर्भाग्यपर !

चलो, पीछे मुड़ो। गेहूँ और गुलाब में हम एक बार फिर सम-तुलन स्थापित करें।

किंतु मानव क्या पीछे मुड़ा है? मुड़ सकता है?

यह महायात्री चलता रहा है, चलता रहेगा !

और क्या नवीन सम-तुलन चिरस्थायी हो सकेगा? क्या इतिहास फिर दुहराकर नहीं रहेगा?

नहीं, मानव को पीछे मोड़ने की चेष्टा न करो।

अब गुलाब और गेहूँ में फिर समतुलन लाने की चेष्टा में सिर खपाने की आवश्यकता नहीं।

अब गुलाब गेहूँ पर विजय प्राप्त करे ! गेहूँ पर गुलाब की विजय - चिर विजय! अब नए मानव की यह नई आकांक्षा हो!

क्या यह संभव है?

बिलकुल सोलह आने संभव है !

विज्ञान ने बता दिया है - यह गेहूँ क्या है। और उसने यह भी जता दिया है कि मानव में यह चिर-बुभुक्षा क्यों है।

गेहूँ का गेहुँत्व क्या है, हम जान गए हैं। यह गेहुँत्व उसमें आता कहां से है, हमसे यह भी छिपा नहीं है।

पृथ्वी और आकाश के कुछ तत्व एक विशेष प्रतिक्रिया के पौदों की बालियों में संगृहीत होकर गेहूँ बन जाते हैं। उन्हीं तत्वों की कमी हमारे शरीर में भूख नाम पाती है !

क्यों पृथ्वी की कुड़ाई, जुताई, गुड़ाई! हम पृथ्वी और आकाश के नीचे इन तत्वों को क्यों न ग्रहण करें?

यह तो अनहोनी बात - युटोपिया, युटोपिया!

हाँ, यह अनहोनी बात, युटोपिया तब तक बनी रहेगी, जब तक मानव संहार-काण्ड के लिए ही आकाश-पाताल एक करता रहेगा। ज्यों ही उसने जीवन की समस्याओं पर ध्यान दिया, यह बात हस्तामलकवत् सिद्ध होकर रहेगी !

और, विज्ञान को इस ओर आना है; नहीं तो मानव का क्या, सर्व ब्रह्माण्ड का संहार निश्चित है !

विज्ञान धीरे-धीरे इस ओर भी कदम बढ़ा रहा है !

कम से कम इतना तो अवश्य ही कर देगा कि गेहूँ इतना पैदा हो कि जीवन की परमावश्यक वस्तुएँ हवा, पानी की तरह इफरात हो जायँ। बीज, खाद, सिंचाई, जुताई के ऐसे तरीके और किस्म आदि तो निकलते ही जा रहे हैं जो गेहूँ की समस्या को हल कर दें !

प्रचुरता - शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले साधनों की प्रचुरता - की ओर आज का मानव प्रभावित हो रहा है !

प्रचुरता? - एक प्रश्न चिह्न!

क्या प्रचुरता मानव को सुख और शांति दे सकती है?

'हमारा सोने का हिंदोस्तान' - यह गीत गाइए, किंतु यह न भूलिए कि यहाँ एक सोने की नगरी थी, जिसमें राक्षसता निवास करती थी! जिसे दूसरे की बहूबेटियों को उड़ा ले जाने में तनिक भी झिझक नहीं थी।

राक्षसता - जो रक्त पीती थी, जो अभक्ष्य खाती थी, जिसके अकाय शरीर था, दस शिर थे, जो छह महीने सोती थी !

गेहूँ बड़ा प्रबल है - वह बहुत दिनों तक हमें शरीर का गुलाम बनाकर रखना चाहेगा! पेट की क्षुधा शांत कीजिए, तो वह वासनाओं की क्षुधा जाग्रत कर बहुत दिनों तक आपको तबाह करना चाहेगा।

तो, प्रचुरता में भी राक्षसता न आवे, इसके लिए क्या उपाय?

अपनी मनोवृत्तियों को वश में करने के लिए आज का मनोविज्ञान दो उपाय बताता है - इंद्रियों के संयमन की ओर वृत्तियों को उर्ध्वगामी करने की।

संयमन का उपदेश हमारे ऋषि-मुनि देते आए हैं। किंतु इसके बुरे नतीजे भी हमारे सामने हैं - बड़े-बड़े तपस्वियों की लंबी-लंबी तपस्याएँ एक रम्भा, एक मेनका, एक उर्वशी की मुस्कान पर स्खलित हो गईं !

आज भी देखिए। गांधीजी के तीस वर्ष के उपदेशों और आदेशों पर चलनेवाले हम तपस्वी किस तरह दिन-दिन नीचे गिरते जा रहे हैं।

इसलिए उपाय एकमात्र है - वृत्तियों को उर्ध्वगामी करना !

कामनाओं को स्थूल वासनाओं के क्षेत्र से ऊपर उठाकर सूक्ष्म भावनाओं की ओर प्रवृत्त कीजिए।

शरीर पर मानस की पूर्ण प्रभुता स्थपित हो - गेहूँ पर गुलाब की !

गेहूँ के बाद गुलाब - बीच में कोई दूसरा टिकाव नहीं, ठहराव नहीं !

गेहूँ की दुनिया खत्म होने जा रही है। वह दुनिया जो आर्थिक और राजनीतिक रूप में हम सब पर छाई है।

जो आर्थिक रूप से रक्त पीती रही, राजनीतिक रूप में रक्त बहाती रही !

अब दुनिया आने वाली है जिसे हम गुलाब की दुनिया कहेंगे। गुलाब की दुनिया -मानस का संसार - सांस्कृतिक जगत्।

अहा, कैसा वह शुभ दिन होगा हम स्थूल शारीरिक आवश्यकताओं की जंजीर तोड़कर सूक्ष्ममानव-जगत् का नया लोक बनाएँगे?

जब गेहूँ से हमारा पिण्ड छूट जायगा और हम गुलाब की दुनिया में स्वच्छंद विहार करेंगे !

गुलाब की दुनिया- रंगों की दुनिया, सुगंधों की दुनिया!

भौंरे नाच रहे, गूँज रहे; फुल सूँघनी फुदक रही, चहक रही! नृत्य, गीत - आनंद, उछाह!

कहीं गंदगी नहीं, कहीं कुरूपता नहीं, आंगन में गुलाब, खेतों में गुलाब, गालों पर गुलाब खिल रहे, आँखों से गुलाब झाँक रहा !

जब सारा मानव-जीवन रंगमय, सुगंधमय, नृत्यमय, गीतमय बन जायगा! वह दिन कब आयेगा !

वह आ रहा है - क्या आप देख नहीं रहे हैं ! कैसी आँखें हैं आपकी। शायद उन पर गेहूँ का मोटा पर्दा पड़ा हुआ है। पर्दे को हटाइए और देखिए वह अलौकिक स्वर्गिक दृश्य इसी लोक में, अपनी इस मिट्टी की पृथ्वी पर ही!

शौके दीदार अगर है, तो नजर पैदा कर !

साभार : हिन्दीसमयडॉटकॉम

परिचय : रामवृक्ष बेनीपुरी

जन्म : 23 दिसंबर, 1899, बेनीपुर, मुजफ्फरपुर (बिहार)

भाषा : हिंदी विधाएँ : उपन्यास, कहानी, निबंध, नाटक

मुख्य कृतियाँ

उपन्यास : पतितों के देश में, आम्रपाली

कहानी संग्रह : माटी की मूरतें

निबंध : चिता के फूल, लाल तारा, कैदी की पत्नी, गेहूँ और गुलाब, जंजीरें और दीवारें

नाटक : सीता का मन, संघमित्रा, अमर ज्योति, तथागत, शकुंतला, रामराज्य, नेत्रदान, गाँवों के देवता, नया समाज, विजेता, बैजू मामा

संपादन : विद्यापति की पदावली

निधन : 1968

निबन्ध

कला और नीति

इलाचंद्र जोशी

कला का मूल उत्स आनंद है। आनंद प्रयोजनातीत है। सुंदर फूल देखने से हमें आनंद प्राप्त होता है। पर उससे हमारा कोई स्वार्थ या प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। प्रभा की उज्ज्वलता और संध्या की स्निग्धता देखकर चित्त को एक अपूर्व शांति प्राप्त होती है। पर उससे हमें कोई शिक्षा नहीं मिलती। न कोई सांसारिक लाभ ही होता है। कारण आनंद का भाव समस्त लौकिक शिक्षा तथा व्यवहार से अतीत है। उसमें कोई बहस नहीं चल सकती।

हमें आनंद क्यों मिलता है? इसका कोई कारण नहीं बताया जा सकता। वह केवल अनुभव ही किया जा सकता है। 'ज्यों गूँगे मीठे फल को रस अंतर्गत ही भावै।' आनंद का भाव वाणी और मन की पहुँच के बिल्कुल अतीत है। 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।' पर नीति का संबंध मन के साथ है। मन बिना आलोचना के, आनंद के सहज भाव को ग्रहण नहीं करना चाहता। वह पोथी पढ़-पढ़कर 'पंडिताई' में मस्त रहता है। सहज प्रेम के 'ढाई अक्षर' से उसकी तृप्ति नहीं होती। वह कविता पढ़कर इस बात की खोज में लग जाता है कि इसमें अर्थनीति, राजनीति, राष्ट्रतत्व, भूतत्व, जीवतत्व अथवा और कोई तत्व हैं या नहीं। वह यह नहीं समझना चाहता कि इस कविता में आनंद का जो अमिश्रित रस है, उसके किसी भी तत्व का कोई मूल्य नहीं। पर जो लोग इस दुष्ट समालोचक मन को दमन करने में समर्थ होते हैं, वे कला के 'आनंदरूपमृतम् का अनुभव कर लेते हैं।

उपनिषदों में हमारे भीतर पाँच पृथक-पृथक कोषों का अवस्थान बतलाया गया है - अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष और आनंदमय कोष। अन्नमय कोष के संस्थान के लिए हमें अर्थनीति की आवश्यकता होती है। प्राणमय कोष की पुष्टि के लिए धर्मनीति की, मनोमय कोष के लिए कामनीति की और विज्ञानमय कोष के लिए वैज्ञानिक नीति की। पर जब इन सब कोषों की स्थिति को पार करके मनुष्य आनंदमय कोष के द्वार खटखटाता है, तो वहाँ सब प्रकार की नीति तथा नियमों के गट्ठर को फेंककर भीतर प्रवेश करना पड़ता है। वहाँ यदि नीति किसी उपाय से घुस भी गई; तो उसे इच्छा के शासन में वेष बदलकर दुबके हुए बैठना पड़ता है। लौकिक तथा प्राकृतिक बंधनों की अवज्ञा करने वाली इस सर्वजयी इच्छा महारानी के आनंदमय दरबार में नैतिक शासन का काम नहीं है। वहाँ सहज प्रेम का कारोबार है। वहाँ इस प्रेम के बंधन में बँधकर पाप और पुण्य भाईभाई की तरह एक-दूसरे के गले मिलते हैं।

नीति? इस विपुल सृष्टि के मूल में क्या नीति है? क्या प्रयोजन है? क्या तत्व है? प्रतिदिन असंख्य प्राणी विनाश को प्राप्त हो रहे हैं, असंख्य प्राणी उत्पन्न होते जाते हैं; उत्पन्न होकर फिर अपने प्रेम, घृणा, सुख-दुख, हँसी-रुलाई का चक्र पूरा करके अनंत में विलीन हो रहे हैं। इस समस्त चक्र का अर्थ ही क्या है? अर्थ कुछ भी नहीं। यह केवल भूमा के सहज आनंद की लीला है।

विश्व की इस अनंत सृष्टि की तरह कला भी आनंद का ही प्रकाश है। उसके भीतर नीति, तत्व अथवा शिक्षा का स्थान नहीं। उसके अलौकिक मायाचक्र से हमारे हृदय की तंत्री आनंद की झंकार से बजउठती है। यही हमारे लिए परम लाभ है। उच्च अंग की कला के भीतर किसी अन्य तत्व की खोज करना सौंदर्य देवी के मंदिर को कलुषित करना है।

हिंदी-साहित्य के वर्तमान समालोचक जब तक कला की किसी रचना में कोई तत्व नहीं पाते, तब तक उसकी श्रेष्ठता स्वीकार करने में अपना अपमान समझते हैं। जिन रचनाओं की वे प्रशंसा करते हैं, उनकी विशेषता के संबंध में यदि उनसे पूछा जाय, तो वे उत्तर देते हें कि अमुक रचना में किसानों की दुर्दशा का प्रश्न हल किया गया है। अमुक ग्रंथ में राष्ट्रतत्व की व्याख्या बहुत अच्छी तरह की गई है। अमुक ग्रंथ में हमारे सामाजिक पतन पर विचार किया गया है। यह हमारे समालोचकों के कला-संबंधी विचारों के आदर्शों का नमूना है ! इन आदर्शों के आधार पर कला की श्रेष्ठता का विचार करने से साहित्य में हीनता उपस्थित होती है।

रामायण के मूल आदर्श के भीतर हमको कौन-सा नैतिक तत्व प्राप्त होता है? कुछ भी नहीं। उसके भीतर केवल राम की विपुल प्रतिभा की स्वाधीन इच्छा का लीलामय चक्र, विस्तृत रूप से अत्यंत सुंदरता के साथ चित्रित हुआ है। रामायण निस्संदेह वृहत ग्रंथ है। उसके विस्तृत क्षेत्र में सहस्रों प्रकार के नैतिक उपदेश स्थान-स्थान पर ढूँढ़ने से मिल सकते हैं। पर इस प्रकार खंड-खंड रूप से इस महाकाव्य को विभक्त करने से उसकी अखंड, वास्तविक तथा मूल सत्ता का नाश हो जाता है। यदि उसकी वास्तविक श्रेष्ठता का कारण हमें मालूम करना है, तो हमें उसकी समग्रता पर ध्यान देना होगा। उसके मूल आदर्श पर विचार करना पड़ेगा। रामायण से यदि हमें केवल यही तत्व पाकर संतोष करना पड़े कि उसमें पितृ-भक्ति, भ्रातृ-स्नेह तथा पतिव्रत्य का उपदेश दिया गया है, तो यह महाकाव्य अपनी आनंदोत्पादिनी महत्ता को खोकर एक अत्यंत क्षुद्र नीति ग्रंथ में परिणत हो जाता है। ऐसे उपदेश हमें सहस्रों साधारण नैतिक श्लोकों तथा प्रवचनों से रात-दिन मिलते रहते हैं। तब इस काव्य में विशेषता क्या है? इसकी कथा सहस्रों वर्षों से जनता के हृदयों में अखंड रूप से क्यों विराजती आई है? कारण वही है, जो हम पहले बतला आए हैं। अनादि पुरुष की 'एकोहं बहुस्याम्' की इच्छा की तरह प्रतिभा भी सृजन कार्य करती है। जिस प्रकार सृष्टिकर्ता के उपदेश का रहस्य कुछ न जानने पर भी हमें उसकी माया के खेल में आनंद आता है, उसी प्रकार प्रतिभा की स्वाधीन इच्छामयी उद्दाम प्रवृत्ति की सर्जना का अभिनव विलास देखकर, उसका मूल आदर्श न समझने पर भी, हमें सुख प्राप्त होता है।

राम की प्रतिभा अपूर्व तथा सुविस्तृत थी। राम तत्काल वन-गमन के लिए क्यों तत्पर हो गए? पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए उन्होंने ऐसा नहीं किया। वह पिता की इच्छा भली-भाँति जानते थे। वह जानते थे कि पिता उन्हें भेजना नहीं चाहते और यथाशक्ति उन्हें ऐसा करने से रोकेंगे भी। पर प्रतिभा किसी भी बात पर सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से विचार करके बाल की खाल निकालना नहीं चाहती। इसीलिए लोग उसका इतना सम्मान करते हैं। वह एक झलक में समस्त स्थिति को समझकर अपना कर्तव्य निर्धारण कर लेती है। अंग्रेजी में जिसे exalted state of mind (मन की उन्नत अवस्था) कहते हैं, राम की मानसिक स्थिति सर्वदा, सब समय वैसी ही रहती थी। उनकी प्रतिभा की विपुलता अपने आप में आबद्ध न होकर प्रतिरक्षण, नाना रूपों में, नाना क्षेत्रों में, अपने को विस्तारित करने के लिए उन्मुख रहा करती थी। उसकी गति प्रतिक्षण वर्तमान को भेदकर सुदूर भविष्य की ओर प्रवाहित होती रहती थी। पति-पत्नी, पिता-पुत्र तथा भाई-भाई के बीच तुच्छ स्वार्थ की छीना-झपटी की अत्यंत हास्यकर तथा नीच प्रवृत्ति के प्राबल्य की आशंका करके उन्होंने अत्यंत प्रसन्नता तथा वज्र-कठिन दृढ़ता के साथ महत् त्याग स्वीकार किया। अपने गृह में घनीभूत स्वार्थ-भाव को त्याग के करुणा-विगलित रस से बहाकर साफ कर दिया। उन्होंने पिता का प्रण निभाया, इस बात पर हमें उतनी श्रद्धा नहीं होती, जितनी इस बात पर विचार करने से कि उन्होंने इस स्वार्थ-मग्न संसार के प्रतिदिन के व्यवहार की यवनिका भेदकर सुदूर अनंत की ओर अपनी प्रतिभा की सुतीक्ष्ण दृष्टि प्रेरित की। उनकी इस इच्छा-शक्ति के वेग की प्रबलता के कारण ही हमें इतना आनंद प्राप्त होता है और हृदय बारंबार संभ्रम तथा श्रद्धा के साथ उनके पैरों तले पतित होना चाहते हैं।

यदि कोरी नीति के आधार पर ही समस्त कार्यों का निर्धारण करना हो, तो राम का वन-गमन अनीतिमूलक भी कहा जा सकता है। उनके वन-गमन से उनकी प्रजा को कितना कष्ट उठाना पड़ा, इसका उल्लेख रामायण में ही है। उनके पिता की मृत्यु का कारण भी यही था। भरत को सुख-भोग की जगह तपस्या करनी पड़ी। यह सब परिणाम समझते हुए भी राम वन गए थे। वन में उन्हें जाबालि मुनि मिले थे। जाबालि ने उनके वनवास को व्यर्थ साधना बतलाया। उन्होंने कहा, 'तुम्हारी इस साधना की कुछ भी उपयोगिता नहीं। तुम समझते हो कि पिता का प्रण निभाकर तुमने महत् कार्य किया है। पर यदि वास्तव में देखा जाय तो कौन किसका पिता है, कौन किसका भाई? जब तक जीवित रहना है, तब तक मौज करते चले जाओ। इस भस्मी-भूत देह का पुनरागमन कहाँ है? मरने के बाद कौन पिता है और कौन पुत्र? केवल दुर्बल भावुकता के कारण ही तुमने वन-गमन स्वीकार किया है और मोहांधता के कारण इस त्याग को तुम श्रेष्ठ आदर्श समझे बैठे हो।'

यदि केवल नीति के ही पीछे लग जाय, तो जाबालि की यह उक्ति वास्तव में यथार्थ जान पड़ती है। परलोक की कौन जानता है! इसी जीवन में प्रत्यक्ष में जो निश्चित लाभ होता है, चाणक्य की 'यो ध्रुवाणि परित्यज्य' वाली नीति के अनुसार वही श्रेष्ठ है। और 'आत्मानं सततं रक्षेत् दारैरपि वाली उक्ति से सभी परिचित हैं। अपना स्वार्थ ही कोरी नीति की दृष्टि से सबसे बड़ी बात है। पर हम पहले ही कह आए हैं कि

प्रबल प्रतिभा का संप्लवन नैतिक तथा नैयायिक उक्तियों को ग्रहण नहीं करता। अकारण ही अपने को प्लावित करने में उसे आनंद मिलता है।

राम जानते थे कि उनके वनवास की कोई सार्थकता नहीं है। पर उनकी प्रतिभा ने यही दिखलाना चाहा कि उनकी आत्मा अनंत की विपुलता से पागल है और अपने क्षुद्र परिवेष्टन के भीतर बंद नहीं रहना चाहती। आत्म-प्रकाश का आनंद इसे ही कहते हैं। यदि नैतिक उपयोगिता का विचार करके उन्होंने वन-गमन किया होता, तो यह घटना आज मानव-हृदय की करुणा से इतना द्रवीभूत न करती। कवि के तीव्र आत्मानुभव तथा उसकी कल्पना की वास्तविकता का परिचय हमें यहीं पर मिलता है।

यह नीति की छोटी-मोटी बातों पर ध्यान देना आवश्यक होता तो आज महाभारत के समान विपुल काव्य से हम वंचित रहते। कवि को बात-बात पर सफाई देनी होती कि द्रौपदी के पाँच पति क्यों थे? वेदव्यास जैसे महात्मा का जन्म घृणित व्यभिचार से क्यों हुआ? धृतराष्ट्र और पांडु क्षेत्रज पुत्र होने पर भी महाशक्तिशाली क्यों हुए? कुंती कौमार्यावस्था में ही गर्भवती होने पर भी पांडवों की सर्वजन प्रशंसिता माता क्यों हुई? (सूर्य की दुहाई देना वृथा है विवेचक पाठक जानते हें कि सूर्य के समान किसी तेजस्वी पुरुष के औरस से ही कर्ण का जन्म हुआ था - सूर्य रूपक-मात्र हैं।) ऐसे असंख्य उदाहरण दिए जा सकते हैं। पर महाभारतकार की कलम लेशमात्र भी इन कारणों से नहीं हिचकी। कारण स्पष्ट है। कवि यही दिखलाना चाहता है कि इन तुच्छ नैतिक उल्लंघनों से उसके महत् आदर्श पर तनिक भी आँच नहीं आ सकती। इस प्रकार हम पाते हैं कि कला का आदर्श छोटी-मोटी नीतियों से बहुत ऊपर उठा हुआ होता है।

कालिदास का मेघदूत क्या नीति सिखाता है? विरहजन्य आनंद की इस रचना का लक्ष्य यदि नीति की ओर होता, तो वह असह्य हो उठती। अलकापुरी के जिस आनंदमय देश की ओर कवि हमें आकर्षित करके ले चलता है, उसके संबंध में हमारे मन में यह प्रश्न बिल्कुल ही नहीं उठता कि वहाँ जाकर क्या होगा? किसी नैतिक लाभ के लिए हम अलकापुरी नहीं जाते। हम जाते हैं आनंद की विपुलता अनुभव करने के लिए। वहाँ जिस आनंद का हम अनुभव करते हैं, वह तुच्छ सुख-दुख, क्षुधा-तृष्णा तथा पाप-पुण्य के अतीत है।

केवल हमारे ही देश में नहीं, पाश्चात्य देशों में भी बहुत से लोग नीति के उपासक हैं। गेटे की रचनाओं में नीति की अवहेलना देखकर कई लोग उन पर बरस पड़े हैं। शेक्सपीयर के नाटकों में से कई समालोचक अपनी इच्छानुसार नीति निकालने में व्यस्त रहते हैं। प्रकृति के सच्चे उपासक, प्रसिद्ध फ्रांसीसी चित्रकार मिले (Millet) की कला के बहुत से आलोचकों ने उसकी राजनीतिक व्याख्या करने की चेष्टा की थी। वह बात इस प्रकृति के के चतुर चितेरे को बहुत बुरी लगी। प्रसिद्ध क्रांतिकारी प्रूधों (Proudhon) ने उसे चित्रों के जरिए राजनीतिक प्रश्न हल करने के लिए उकसाया। पर वह इस अयुक्त प्रस्ताव पर सहमत नहीं हुआ। इससे यह न समझना चाहिए कि वह देशद्रोही था। राजनीति

से देश-प्रेम का कोई संबंध नहीं। सहज प्रेम के साथ नीति का क्या संबंध हो सकता है?

मिले स्वयं कृषक का पुत्र था। किसानों के प्रति उसकी इतनी सहानुभूति थी कि उसके प्रायः सभी चित्रों से कृषक-जीवन की सरलता का सुमधुर परिचय मिलता है। उसके चित्रों की सरलता से मानवात्मा के अंतर का आभास अत्यंत सुंदर रूप से आँखों में झलकता है और हृदय में किसानों के प्रति आंतरिक सहानुभूति उमड़ी पड़ती है। पर उसका उद्देश्य किसानों की दुर्दशा का चित्र खींचकर तात्कालिक साम्यवाद की राजनीतिक महत्ता 'प्रचार' करने का नहीं था। यही कारण है कि उसके चित्रों ने अमरत्व प्राप्त कर लिया है।

महाकवि गेटे को जर्मनी के कई समालोचकों ने इस बात के लिए कोसा था कि वे सदा राजनीति से विमुख रहे हैं। इस पर उन्होंने लूर्डन से कहा था- 'जर्मनी मुझे प्राणों से प्यारा है। मुझे इस बात पर दुख होता है कि जर्मन लोग व्यक्तिगत रूप से इतने उन्नत होने पर भी समष्टिगत रूप से इतने ओछे हैं कि अन्य जाति के लोगों के साथ जर्मन लोगों की तुलना करने से हृदय में व्यथा का भाव उत्पन्न होता है। इस भाव को मैं किसी भी उपाय से भूलना चाहता हूँ। कला और विज्ञान में मैं इस व्यथाजनक भाव से त्राण पाता हूँ, क्योंकि उनका संबंध समस्त विश्व से है। उनके आगे राष्ट्रीयता की सीमा तिरोहित होती है।' पाठकों को मालूम होगा कि रवींद्रनाथ का भी यह मत है। गेटे ने किसी अन्य स्थान पर कहा है - 'सत्य की इसी सरल उक्ति पर लोग विश्वास नहीं करना चाहते कि कला का एकमात्र उन्नत ध्येय भाव को प्रतिबिंबित करना है। इंग्लैंड के प्रसिद्ध साहित्यालोचक कार्लाइल जब एक बार बर्लिन गए थे, तो किसी भोज के अवसर पर कुछ लोगों ने गेटे पर यह दोष लगाना आरंभ किया कि इतने बड़े प्रतिभाशाली कवि होने पर भी उन्होंने धर्मसंबंधी बातों की अवहेलना की है। कार्लाइल ने उनकी संकीर्णता से कुढ़कर कहा - 'Mein Herren, did you never hear the story of that man who vilified the sun because it would not light his cigar?' 'महाशयो! क्या आपने कभी उस मनुष्य की यह कहानी नहीं सुनी जो सूर्य को इस कारण रोकता था कि वह उनकी चुरट जलाने के काम नहीं आता?' यह मुँहतोड़ जवाब सुनकर किसी के मुँह से एक शब्द न निकला!

सभी जानते हैं कि रूसो नीति के कितने पक्षपाती थे। पर जब वह कला की रचना करने बैठते थे, तब नीति-वीति सब भूल जाते थे। उनके प्रसिद्ध उपन्यास La Nouvelle Heloise में उनके अपने हृदय की क्षुब्ध वेदना प्रतिबिंबित हुई है। उनके इस आत्मप्रकाश की मनोहरता के कारण ही यह ग्रंथ इतना आदरणीय है। सच्चा कलाविद् हृदय की प्रेरणा से ही चित्र खींचता है, न कि बाह्य आवश्यकता के अनुसार !

टाल्सटाय को नीति की छोटी-छोटी बातों का भी बड़ा ख्याल रहता था। यहाँ तक कि अपने 'What is Art' शीर्षक पुस्तक में उन्होंने अनीतिमूलक ग्रंथों की तीव्र निंदा करके यह मत प्रतिष्ठित किया है कि कला के भीतर नीति का होना परमावश्यक है। उन्होंने जिस समय यह मत प्रचारित किया था, उस समय उन्होंने यह भी लिखा था कि, 'मेरी इस समय से पहले की रचनाएँ दोष-पूर्ण समझी जानी चाहिए।' पर उनका सर्वश्रेष्ठ

उपन्यास 'अन्ना कैरेनिना' इसके बाद लिखा गया था। इसके प्रकाशित होने पर लोगों को यह आशंका हुई थी कि उसमें नीति भरी पड़ी होगी। पर उनकी यह आशंका निर्मूल निकली।

टाल्सटाय सच्चे कलाविद् तथा शिल्पी थे। उनका व्यक्तिगत मत चाहे कुछ भी रहा हो, पर उनकी आत्मा में कवि स्वभाव का राज होने के कारण कला की रचना में वह नीति की संकीर्णता घुसेड़कर कला के आदर्श को खर्च नहीं कर सकते थे। 'अन्ना कैरेनिना' में किटी के गार्हस्थ्य-जीवन की शांत, सुखमय छवि अवश्य हृदय को आराम पहुँचाती है, पर अभागिनी अन्ना के संघर्षण-क्रिष्ट, 'दुर्नीति-मूलक' जीवन के प्रति प्रत्येक पाठक की आंतरिक संवेदना उमड़ी पड़ती है। और तो क्या, स्वयं ग्रंथकार ने अपनी इच्छा के प्रतिकूल, अनजाने ही अंत तक अन्ना के जीवन की 'ट्रेजेडी' के प्रति अपनी सहानुभूति प्रदर्शित की है। आरंभ में ग्रंथकार का प्रकट लक्ष्य किटी के गार्हस्थ्य तथा नीति-अनुमोदित जीवन को स्निग्धता और अन्ना के जटिल तथा नीति विरुद्ध जीवन के बीच अंतर प्रदर्शित करके एक निश्चित नैतिक सिद्धांत प्रतिष्ठित करने का रहा है। पर थोड़ी ही दूर जाकर, दुखिनी अन्ना के उन्नत चरित्र की जटिलता का विचार करके, उसका यह उद्देश्य शिथिल हो जाता है और अंत में मानव चरित्र की अंतर्गत दुर्बलता की समस्या का कोई समाधान ही कवि नहीं करने पाता है। कहाँ वह कठिन नीतिज्ञ का निष्ठुर दंड लेकर 'दुर्नीति को शासित करने चला था, कहाँ शासित व्यक्ति के साथ मानवता के समान सूत्र में ग्रसित होकर उसे भी रोकना पड़ा है! सच्चे कलाविद् की श्रेष्ठता का प्रमाण इसी से मिलता है।

वह अपने प्राणों की प्रेरणा के चरित्र चित्रित करता है और अपने प्राणों ही में वह उन चरित्रों की यातनाओं का अनुभव भी करता है। धर्मध्वजी लेखक की तरह अपने चरित्रों से अपने को बिल्कुल अलग समझकर वह शासक नहीं बनना चाहता।

- साभार : हिन्दीसमयडॉटकॉम

परिचय : **इलाचंद्र जोशी**

जन्म : 13 दिसंबर 1903, अल्मोड़ा (उत्तराखंड)

भाषा : हिंदी विधाएँ : कहानी, उपन्यास आलोचना, निबंध, कविता

मुख्य कृतियाँ

उपन्यास : घृणामयी, संन्यासी, पर्दे की रानी, प्रेत और छाया, निर्वासित, मुक्तिपथ, सुबह के भूले, जिप्सी, जहाज का पंछी

कहानी संग्रह : धूपरेखा, दीवाली और होली, रोमांटिक छाया, आहुति, खंडहर की आत्माएँ, डायरी के नीरस पृष्ठ, कँटीले फूल लजीले काँटे

अन्य : साहित्य-सर्जना, विवेचना, विश्लेषण, साहित्य-चिंतन, रवीन्द्रनाथ, देखा-परखा, सूदखोर की पत्नी, शरत : व्यक्ति और कलाकार

कहानी

तोता सुकुल

अरुणेश नीरन

तोता सुकुल, जवार भर के लिए, तोता सुकुल थे। वैसे, नाम था - वृंदावन नाथ शुक्ल। पिता मथुरा-वृंदावन की यात्रा से लौटे ही थे कि पता चला कि बेटा हुआ है। वृंदावन-बिहारी का प्रसाद मानकर बेटे का नाम रखा गया वृंदावन। बाबा-ईया को तो नाती का मुँह देखना नसीब ही तब हुआ जब परलोक पधारने की तैयारी वे एक तरह से पूरी कर चुके थे। चारोंधाम हो चुका था। रामचन्नर पंडित भागवत सुनाकर यज्ञ करा चुके थे, तुलसी की माला फेरते-फेरते अँगुलियों में घट्ठे पड़ चुके थे। लेकिन नाती ने आकर उनके स्वर्ग सिधारने की इस तैयारी को कुछ काल के लिए जैसे टाल दिया। बाबा नाती को 'सुगना' कहते, ईया कहतीं - 'तोता'। धीरे-धीरे समूचा गाँव उन्हें तोता सुकुल कहने लगा। यह सिलसिला साठ साल पहले शुरू हुआ और अब तक चल रहा है। कागज में नाम है वृंदावन और लोगों की जुबान पर तोता।

तोता दर्जा चार तक पहुँचते-पहुँचते विद्वान हो गए थे। इससे आगे पढ़ने में रखा क्या है? तोता सोचते कि इन्हीं अक्षरों से शब्द बनते हैं और वही शब्द तमाम किताबों में पसरे रहते हैं। जब अक्षर और शब्द का ज्ञान हो गया तो जिंदगी भर उसी को मथते रहने में क्या धरा है? तोता पढ़ाई छोड़ कर अखाड़े में जाने लगे और हनुमान जी के भक्त हो गए। ऐसे पक्के भक्त कि बिना हनुमान जी के उनका कोई काम न सँवरे। खेत में पानी चलाना हो तो हनुमान जी चलाएँगे, गन्ना छीलना हो तो हनुमान जी छीलेंगे, रोपनी-सोहनी - सब हनुमान जी के जिम्मे। सिर्फ खाने-सोने-बतियाने का विभाग तोता के पास, बाकि सब के, सबकुछ के इंचार्ज हनुमान जी।

दो नामों का बड़ा सुख। सरकारी कर्ज वृंदावन लें, कर्ज-वसूली के लिए सरकारी अमला पहुँचे तोता सुकुल के पास। तोता कहें - 'यह वृंदावनवा कौन है? मैं तो उसे जानता ही नहीं !

अमीन-पटवारी ने जब हार मान ली, वसूली के लिए एक दिन तहसीलदार खुद पहुँचा। गाँव के सीवान पर उसकी तोता सुकुल से भेंट हो गई। उसने उनसे वृंदावन नाथ शुक्ल का पता पूछा तो तोता को तो जैसे बिच्छू छू गया - "अरे सरकार, वह तो बहुत बड़ा फ्राडिया है। बड़े-बड़े साहब लोग उसे पकड़ने आए पर पकड़ नहीं पाए। कोई भी सरकारी विभाग ऐसा नहीं जिससे उसने कर्ज नहीं लिया हो और क्या मजाल कि कोई भी माई का लाल उससे एक छदाम भी वसूल पाया हो... स्साला, घर ही में रहता है और कहला देता है कि पहुनाई में गया है... लेकिन सरकार, आज मैं आपको खाली हाथ नहीं लौटने दूँगा... अभी चलिए, नहीं तो

सुनगुन अगर पा लेगा तो साला कहीं निकल भागेगा..."

तहसीलदार के साथ तोता अपने ही दरवाजे पर पहुँचे और भर जोर चिल्लाने लगे "वृंदावन ! ए वृंदावन काका ! घर में हो...?"

भीतर से कोई आवाज नहीं आई तो तोता बोले कि सरकार, घर ही में कहीं छुपा होगा। आप इस मचिया पर बैठिए, मैं भीतर जाकर देखता हूँ कि किस कोने-अंतरे में छुपा है स्साला...। तहसीलदार को बैठाकर तोता घर के भीतर चले गए। वहाँ रस पानी किया, पत्नी से खरी-खुद्दीका हिसाब किया, चौकी पर पीठ सीधी की, फिर बाहर आए तो तहसीलदार साहब मचिया पर बैठे-बैठे सो रहे थे।

"सरकार, मैं तो पहले ही कह रहा था कि बड़ा फ्राडिया है स्साला, भीतर भी नहीं है। एक-एक कोठरी देख ली, भुसौला तक छान मारा... खैर, अबकी बार तो साहब को खाली जाना पड़ेगा लेकिन वादा है तोता का कि उसको पकड़कर अदेर हाजिर कर दूँगा आपके सामने... बेटे की कसम लेकर कहता हूँ, आकाश-पाताल-चाहे जहाँ छुपा हो स्साला, मैं ढूँढ़ कर सरकार के सामने कर दूँगा..." तहसीलदार एँड़ी से चोटी तक गदगद। बोला कि, "ठीक है कि वृंदावन नहीं मिला, लेकिन तुमने मिहनत बहुत की। धन्यवाद। जब मिले तो खबर करना। तुम्हारा कभी कोई काम हो तो तहसील में सीधे मेरे पास चले आना।" और तोता की पीठ ठोककर साहब विदा हुए।

तोता को बाल बच्चा कोई था नहीं, दवा-दारू झाड़-फूँक सबके बावजूद उनके आँगन में थाल नहीं बजी। अपने मामा की बेटी को गोद लेकर पिता होने की साध पूरी कर रहे थे। वैसे, बात बात पर बेटे की कसम खा लेते और जिसे नहीं पता होता वह इस पर विश्वास भी कर लेता।

एक बार रेल की यात्रा में... तोता सुकुल का नियम था कि कभी रेल का टिकट नहीं लेते और सीट की कौन कहे, बाकायदा बर्थ पर, लेटकर यात्रा करते। यात्रा में वे हाफ पैंट पहनते और घुटने तक पट्टी बाँधकर उस पर गुड़ का रस छिड़क लेते। उस पर जब मक्खियाँ भिनकने लगें तब डिब्बे में घुसें, धक्का-मुक्की करते सीट तक पहुँच जाएँ, किसी के ऊपर भहराकर गिर पड़ें। जब लोग गालियाँ देने लगते तो कहते - क्या करें, भगवान ने ऐसा रोग दे दिया है कि न जीते बनता है न मरते...

"क्या हुआ है तुम्हें।"

"हुआ क्या है? हाथ-पैर फूट-फूट बह रहे हैं, और क्या...।" इतना कहकर आकाश की ओर देखते और कहते - "कितनी घिसनी कराओगे राम ! अब तो ले चलो...।"

मिनट भर में सीट खाली और तोता मजे में सीट पर पसर जाएँ। एक बार रास्ते में टी.टी. आ पहुँचा। आते ही टिकट चेक करने लगा। तोता की बगल वाले यात्री

के पास टिकट नहीं था। टी.टी. ने उससे बीस रुपये चार्ज किए। जब वह तोता के पास पहुँचा तो तोता अचकचा कर बाहर देखने लगे। दुबारा माँगने पर झुँझलाकर उसकी तरफ लगातार देखते हुए कहना शुरू किया - टिक्कस? यह क्या होता है? मैं जिंदगी में पहली बार रेल पर बैठा हूँ। खलीलाबाद टेसन पर एक ठो काला-काला पहने मिला था, उसने दस रुपये माँगे तो मैंने दे दिए। अब तुम माँग रहे हो। इस रेल मेंसारे के सारे मँगते ही रहते हैं क्या?

टी.टी. नाराज। कहने लगा तू फ्राड आदमी है। अगला स्टेसन आने दो वहाँ उतार कर जेल भिजवा दूँगा, तुम्हारे जैसे फ्राडियों की दवा मैं जानता हूँ..."

गाड़ी कुछ आगे बड़ी तो मजिस्ट्रेट चेकिंग शुरू हो गई। तोता पकड़े गए। मजिस्ट्रेट के सामने पेश हुए तो सहसा, भोंकार छोड़ के रोने लगे। कचकचा कर पकड़ लिए मजिस्ट्रेट के दोनों पैर। वे बेचारे गिरते-गिरते बचे। डाँटकर पैर छोड़ने को कहा। तोता ने और जोर से पकड़ लिया और रो-रो कर कहने लगे - दुहाई सरकार। मैं गाँव का बुड़बक मनई। जिंदगी में पहली बार रेल पर बैठा। एक जने ने टेसन पर रुपया लेकर बैठा दिया। गाड़ी में टी.टी. बाबू आए और उन्होंने भी बीस रुपये ले लिए। मैं गरीब आदमी सरकार, मुझे इस जुलुम से बचाइए..."

माजिस्ट्रेट को पता नहीं दया आई कि नहीं, लेकिन अपने पैर तो उसे छुड़ाने ही थे। उसने टी.टी. को तलब किया। टी.टी. लगा जैसे रो देगा - "सरकार, मैंने इससे कोई पैसा नहीं लिया। वह बिना टिकट चल रहा था। पेनाल्टी देने को भी तैयार नहीं था। मैंने सिर्फ इतना ही कहा था कि अगले स्टेशन पर उतार दूँगा, सजा से बचने के लिए यह नाटक कर रहा है सरकार।"

"दुहाई सरकार की। झूठ जो बोलूँ तोमेरा जवान बेटा मर जाए। इन्होंने मुझसे बीस रुपये लिए सरकार। इनकी जमा-तलाशी ली जाए, मेरा दिया नोट इनकी थैली में मिलेगा। उस पर रोशनाई लगी है सरकार...।"

टी.टी. की तलाशी ली गई। बीस का एक नोट मिला जिस पर रोशनाई लगी थी। यही वह नोट था जिसे तोता के पड़ोसी मुसाफिरसे टी.टी. ने वसूल किया था। अब तोता के चहरे पर चमक, टी.टी. का मुँह काला। माजिस्ट्रेट ने तोता का बयान लिखा, नाम-पता नोट किया और उन्हें छोड़ दिया।

तोता बाहर निकलकर इक्के पर बैठे और चल पड़े। थोड़ी दूर आगे बढ़ा तो देखा कि टीटी दौड़ा चला आ रहा है। इक्केवान को आदेश हुआ कि भगाओ इक्का। अब शुरू हुई टीटी और इक्के की दौड़। यह दौड़ पूरे कोस भर चली। टीटी साहब बेदम। लगा कि भहराकर गिर पड़ेंगे। इक्का रुका।

"का हो ! हमसे टिकट माँगोगे ? तोता सुकुल से टिकट?"

"अरे बईमान, एक तो बिना टिकट चला, ऊपर से दूसरे के दिए बीस के नोट को अपना बताकर हमें फँसवा दिया, अब क्या नौकरी भी लेगा?"

"नौकरी नहीं जाएगी तुम्हारी। दो सौ रुपए दे दो हमें और जाओ मस्त रहो..."

"अब रुपया भी लेगा हमसे? फ्राडिया कहीं का..."

"तो इक्केवान, चल हाँक जोर से इक्का। जल्दी पहुँचना है..."

दौड़ फिर से शुरू हो गई। घोड़े और आदमी में। कभी घोड़ा आगे बढ़ चला कभी आदमी। आखिर में टीटी साहब जैसे मिर्चा लगाकर दौड़े और घोड़े के आगे खड़े हो गए, इक्का रुक गया।

"ले ले बईमान ये दो सौ रुपये, और लिखकर दे माजिस्ट्रेट को लिखाया गया तुम्हारा बयान झूठा था।"

तोता सुकुल ने रुपया लेकर थैली में रखा और पान थूककर बोले - जाओ मौज करो, कोई तुम्हारा बाल बाँका नहीं कर पाएगा।

"बिना तुम्हारे दिए साबित कैसे होगा कि मैं निर्दोष हूँ? लिखित नहीं होगा तो मेरी नौकरी चली जाएगी।"

"मैंने कहा न कि नहीं जाएगी नौकरी। बयान में जो नाम-पता मैंने लिखवाया है वह सब फर्जी है मेरे बच्चे। माजिस्ट्रेट का बाप भी उस नाम के किसी आदमी को इस दुनिया में कहीं ढूँढ़ नहीं पाएगा। माथे का पसीना पोंछ लो और निश्चित होकर पधारो..."

अकबकाए हुए टी.टी. जब तक कुछ सोचें तब तक एक्का फुर्र हो चुका था।

एक दिन होते प्रातः तोता सुकुल हाजिर। नई कुर्ता-धोती में लकलक।

"क्यों जी, इतने सबेरे? कल तो कचहरी में तारीख थी तुम्हारी, क्या हुआ?"

"होगा क्या! मुकदमा खारिज। लो लौंगलता खाओ। उस बेईमान को ऐसे पटकनी दे कि अभी तक सहला रहा होगा साला..."

"महज तीन तारीख में मुकदमा खारिज?"

तोता सुकुल ने अपने गाँव के एक साहू से पाँच हजार रुपए, ब्याज पर कर्ज लिए थे। पुरनोट लिखवाकर उसने उधार दिया था। तीन महीने में मूल लौटाने की शर्त थी, लेकिन जब दो साल तक सूद-मूल कुछ भी नहीं मिला तो साहू ने कचहरी में नालिस कर दी। कल उसी की तीसरी पेशी थी।

"पता है कि कैसे इतनी जल्दी उस बेईमान साले से छुट्टी मिली?"

"मुझे क्या पता..."

"तो सुनो। कल कचहरी में वह मिला। मेंने चाय-पानी के लिए पूछा और कहा कि भाई, मुझे याद नहीं आ रहा कि पुरनोट में मैंने क्या लिखा है, तनिक दो तो देखूँ... अगर उसमें जितना तुम बता रहे हो उतना रुपया लिखा हो तो अभी-का-अभी गिन दूँ। रुपया मैं लेकर आया हूँ। एक ही गाँव के हम रहने वाले, आपस में झगड़ा-टंटा होना नहीं चाहिए। बाहर ही सलटा लिया जाए तो हम लोगों के साथ-साथ गाँव-घर की भी इज्जत रह जाएगी... उसने बैग से निकालकर पुरनोट थमा दिय। मैंने उसे देखते-देखते अचानक मुँह में डाला और खा कर नीम के दातून से जिब्भा कर लिया। अब वह साला क्या करे... रोता-कलपता घर लौट गया, मन भर गरियाते गरियाते। मुकदमा खरिज..."

"तो बेईमान इसमें कौन हुआ?"

"मैं जानता था कि तुम यही सवाल करोगे।" गाँव भर को ठग कर उसने अपनी तिजोरी भर रखी है। जो उसकी खाता-बही में एक बार टँग गया फिर कभी उतर नहीं पाया। गरीबों का खून चूसता रहता है साला। मैंने उसका चूस लिया। वह साला पिशाच तो मैं भी बर्हम। बर्हम तो भूत-पिशाच को ही खाता है, मैं भी खा गया..."

इतना कहकर तोता सुकुल ठठाकर हँसे और डिब्बे में से एक लौंगलता निकाल कर चल पड़े।

एक दिन सबेरे-सबेरे उनके घर गया तो वे बाँस छील रहे थे।

"आओ बाबू आओ...।"

"टोले-मुहल्ले का कोई चला गया क्या कि सुबह-सुबह यह बाँस..."

"अरे नहीं। बाँस में बहुतेरे गुन है। यह गरीबी का सहोदर भाई है। गरीब जिंदगी भर सीढ़ी ही बना रहता है। लोग उस पर चढ़ कर ऊँचे हो जाते हैं लेकिन वह जहाँ-का-तहाँ पड़ा रहता है। अंत में अर्थी पर चढ़कर राम नाम सत्य हो जाता है। सीढ़ी और अर्थी तो एक ही होती है। एक दूसरे को चढ़ाती है, दूसरी खुद भी जल जाती है। यह सब बाँस ही तो करता है।"

"तुम तो भाई संतों की तरह बोल रहे हो..."

"बाँस जैसा संत कौन हो सकता है? यह लचकदार है, हरा और लंबा - चाहे काटकर सीढ़ी बना लो और धरती छोड़कर जिंदगी की छत पर चढ़ जाओ, चाहो तो अर्थी बना लो और सीधे स्वर्ग पहुँच जाओ। उसे काटो, पीतो, छीलो, चीरो, मोड़ो-वह कुछ भी नहीं बोलेगा, लोगों को जिंदगी की छत पर या परमात्मा की छत पर पहुँचाता रहेगा।"

"तुम भी तो, इतने ज्ञान के बाद भी, इसे छील ही रहे हो..."

"मैं नहीं छीलूँगा तो कोई और छीलेगा। बंसवारी में यह कब तक झूलता रहेगा। लोग इसे झूलने देंगे? गरीब को कोई झूलने देता है?"

"गरीब आदमी से इसे मत जोड़ो सुकुल। बाँस और आदमी में फर्क होता है।"

"कोई फर्क नहीं होता वह भी कटता-पितता है और कुछ कह नहीं पाता। दूसरों के लिए सीढ़ी बनते-बनते ही उसकी जिंदगी खतम हो जाती है। देखो, मंदिर में आदमी माथा टेकने जाता है, लेकिन जिस मंदिर में भगवान रहते हैं उसे बनाता कौन है? पत्थर-मिट्टी तोड़कर घाम में जलते हुए और खुद को जलाते हुए मजूरे जब उसे बना देते हैं तब तुम उसमें माथा टेकने और भीख माँगने जाते हो, डोलची में भगवान के सिंगार-पटार का सामान लेकर, जिस डोलची को बाँस के गात-गात को चीर फाड़ के बनाया जाता है। भगवान के सिंगार के सामान ढोने वाले और उनका घर बनाने वाले को कोई पूछता है? इसलिए कह रहा था कि गरीब आदमी और बाँस सहोदर हैं। अब यह पुराण छोड़ो और भेली खाकर पानी पियो।

लेकिन एक दिन बाँस की अर्थी भी धोखा खा गई।

तोता सुकुल अपनी बेटी की नंद की शादी में गए थे। बेटी के दरवाजे पर आगवानी की तैयारी हो रही थी कि तोता सुकुल के मुँहपेट दोनों चलने लगे।

एक-दो लोग लगे और उन्हें लादकर अस्पताल पहुँचा दिया। हैजा वार्ड में भर्ती तोता सुकुल का कोई पुछवैया नहीं था। सभी शादी में व्यस्त और मस्त।

दूसरे दिन अस्पताल के आदमी ने बताया कि कल हैजा वार्ड में भर्ती मरीज आज सबेरे मर गया। लाशखाने में लाश रखी है। कागज-पत्र भरकर जो वारिस हो लाश ले ले। तोता के बेटी-दामाद रोने लगे। लोगों ने चुप कराया और कहा कि शादी के घर में लाश कैसे लाई जाएगी। बराती जानेंगे तो लौट जाएँगे। कोई जाने मत... बाजार से ही अर्थी, धूप, लोहबान, कफन वगैरह खरीदकर सीधे अस्पताल चला जाए और बाहर ही बाहर मसान पर जाकर फूँक आया जाए।

तीन-चार लोगों के साथ तोता के दूर का एक भतीजा अस्पताल पहुँचा। पूरी तैयारी के साथ। अर्थी-धूप-लोहबान-अगरबत्ती सब कुछ पहले ही खरीदा जा चुका था। बस पंचनामा बनाकर अस्पताल से लाश उठा लेना था।

अस्पताल में हड़कंप मचा था। लाशघर से लाश गायब। कर्मचारियों ने एक-एक लाश को उलट-पुलट कर देख लिया लेकिन तोता की लाश का कहीं पता ही नहीं। लाश तो यहीं थी... तो गई कहाँ? धरती खा गई कि आसमान !

मुझे तोता के मरने की सूचना मिली तो मैं भी अस्पताल जाने के लिए निकला। थोड़ी ही दूर चलने पर देखता क्या हूँ कि एक मरियल-सा आदमी एकदम चीकट गमछा लपेटे हुए लड़खड़ाता चला आ रहा है। लगता था जैसे कब्र फोड़कर कोई कंकाल सड़क पर आ गया है।

नजदीक पहुँचने पर मेरा माथा फिर गया। वे साक्षात तोता सुकुल उर्फ वृंदावन नाथ शुक्ल थे जिनकी लाश शवयत्री और अस्पताल के कर्मचारी तब से ढूँढ़ रहे थे।

"तोता, तुम तो जीवित हो !"

"तो तुम क्या समझ रहे हो कि मरा हुआ आदमी सड़क पर चलेगा?"

"अस्पताल से खबर आई थी कि तुम मर गए... लोग सामान लेकर अस्पताल पहुँचे हैं और तुम..."

"बैठो," तोता सड़क किनारे पड़े एक पत्थर पर जैसे भहरा गए।

"बताओ, माजरा क्या है?"

"अरे बाबू, सबेरे डाक्टर स्साला राउंड पर आया और मेरी नाड़ी देखकर नर्स से कहने लगा कि यह मरीज मर गया है, इसकी नाड़ी गायब है। बेड खाली करा के इसे लाशघर में भिजवाओ और इसके घर वालों को खबर कर दो... बाबू, इसके बाद स्सालों ने मुझे उठा के लाशघर में ले जाकर पटक दिया..."

"डाक्टर यह कह रहा था तो तुम्हें होश था?"

"पूरंपूर।"

"तो कहा क्यों नहीं कि मैं जिंदा हूँ?"

"मारे रिस के नहीं बोला। जीते आदमी को स्साले ने मुर्दा कहा तो मारे रिस के मेरा ब्रह्मांड जलने लगा। मैंने भी सोचा कि स्साले, ऐसा बदला लूँगा कि तुम्हारे सात पुस्त वाले याद करेंगे। अब ढूँढ़ों तोता की लाश..."

"यह तो अनर्थ हो गया तोता। चलो फिर से अस्पताल, सभी वहाँ परेशान होंगे...।"

"कोई नहीं परेशान होगा। घर के लोग अस्पताल वालों को गरियाकर लौट आएँगे घर आकर बारात-मरजाद का इंतजाम करना है। और अस्पताल वाले फिर से जिंदा लोगों को मार डालने में लग जाएँगे। तोता के बारे में सोचने की किसे फुरसत है। उन सबों को थोड़ा नाचने दो" - तोता बोलते जा रहे थे - "मुझे इतना दर्द था कि बोला नहीं जा रहा था, उस दर्द को कोई प्रेम से आला लगाकर देखता तो समझता कि भीतर कैसी आग लगी हुई है। वे स्साले आग से आग बुझाने की कोशिश में लगे थे। इससे आग बुझेगी कि धधकेगी

और ! वही धधक रही है। इसीलिए बिना बताए भाग आया हूँ, मैं जल रहा हूँ तो तुम भी स्सालों, जलो !"

"लेकिन घरवाले अस्पताल में परेशान होंगे, खबर करना जरूरी है..."

"जाओ खबर कर दो, मैं आज तुम्हारे ही घर रहूँगा। मरजाद बीत जाने के बाद बेटी के घर जाऊँगा।"

तोता को अपने घर पहुँचाकर मैं अस्पताल जाने लगा तो तोता ने रोका और कहा - देखो, जो सामान है सारा, लेते आना...

"कौन सामान ?"

"अरे वही, जो मेरी लाश जलाने के लिए खरीदा गया है - लोहबान, अगरबत्ती धूप-घी-लकड़ी और अर्थी..."

"अरे यह सब क्या करोगे भाई?"

"लकड़ी पर खाना बनेगा, घी से दाल बघारी जाएगी, अगरबत्ती जला के हनुमान जी की पूजा करूँगा..."

"और अर्थी?"

इतनी लौकियाँ फली हैं छप्पर पर... उसी अर्थी की सीढ़ी पर चढ़कर तोड़ूँगा, तोड़कर चीरूँगा, चीरकर कर छौंकूँगा, छौंककर तरकारी बनाऊँगा, बनाकर खाऊँगा, मेरे घर आओगे तो तुम्हें भी खिलाऊँगा...

साभार : हिन्दीसमयडॉटकॉम

परिचय :
जन्म : 20 जून 1946, देवरिया (उत्तर प्रदेश)
भाषा : हिंदी विधाएँ : कविता, कहानी, यात्रा वृत्तांत, संस्मरण, रिपोर्ताज, आलोचना, शब्द चित्र, पटकथा, निदेशन
मुख्य कृतियाँ
भोजपुरी वैभव, पुरइन पात, शिव प्रसाद सिंह, हमार गाँव, अक्षर पुरुष, प्रतिनिधि भोजपुरी कहानियाँ
फिल्म : या तरुवर में एक पखेरू (कबीर पर आधारित दो घंटे की फिल्म), वागर्थ का वैभव (पं.विद्यानिवास के जीवन और रचनाक्रम पर आधारित)
संपादन : अज्ञेय शती स्मरण, सेतु और नांदी, अज्ञेय शती स्मरण, भोजपुरी के अमर लोकगीत (चार खंड : जीवन चक्र, ऋतु चक्र, श्रम चक्र, भक्ति चक्र श्रृंखला के लेखक, निदेशक, प्रस्तुतकर्ता)
सम्मान
कर्मयोगी सम्मान, विद्यासागर सम्मान, भोजपुरी गौरव सम्मान, अकादमी सम्मान (बिहार के राज्यपाल द्वारा), बिहारी वैभव सम्मान

संस्मरण

नींव के पत्थर

सूर्यनारायण रणसुभे

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा से मैं जुड़ा केवल मेरे प्रति अनन्य रूप से श्रद्धा भाव रखने वाले वर्धा के ही डॉ. हेमचंद्र वैद्य जी के कारण। वैद्य जी उन दिनों विश्वविद्यालय की शायद स्थानिक सलाहकार समिति के सदस्य थे। बाद में वे इस विश्वविद्यालय के विशेष कर्तव्य अधिकारी (O.S.D.) तथा कभी प्रभारी उपकुलपति भी रहे। स्थापना के आरंभ के चार-पाँच वर्षों तक विश्वविद्यालय में किसी भी विषय की कक्षाएँ शुरू नहीं हुई थी। प्राथमिक जरूरतों की पूर्ति के लिए (भूखंड अधिग्रहण तथा अन्य जरूरी बातें) विश्वविद्यालय का कार्यालय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के परिसर में शुरू किया गया था। संभवत: सन् 2000 या 2001 में विश्वविद्यालय की ओर से एक पुनश्चर्या पाठ्यक्रम का आयोजन किया गया था। डॉ. हेमचंद्र वैद्य जी ने मुझे एक वक्ता के रूप में आमंत्रित किया। देश भर के विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालय में से कुछ चुने हुए 40- 50 प्राध्यापक प्रतिभागी इसके लिए आए थे। सेवाग्राम के यात्री निवास में कक्षाएँ लगती थीं। मुझे अब ठीक से याद नहीं, शायद मै हिंदी के भक्ति साहित्य पर व्याख्यान दे रहा था। मेरा व्याख्यान सुनने के बाद दिल्ली से आए इस विश्वविद्यालय के अकादमिक संयोजक डॉ. अपूर्वानंद जी मुझसे मिले। मेरा यह व्याख्यान हमेशा की तरह पारंपरिक विवेचन से भिन्न था। वे इस व्याख्यान से काफी प्रभावित हुए। उन्होंने आग्रह किया कि अगले वर्ष से विश्वविद्यालय हिंदी साहित्य, अहिंसा और शांति तथा स्त्री विमर्श के विभाग शुरू कर रहा है। आप हिंदी साहित्य के एम. ए. के विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए अतिथि प्राध्यापक के रूप में आएं। कम से कम एक महीना। अधिक से अधिक जितना आप चाहें। मैंने पूरी विनम्रता से कहा कि "अभी मै सेवा में हूँ। अगस्त 2002 मे मैं अवकाश ग्रहण करने वाला हूँ। उसके बाद ही मैं अपनी सेवाएँ दे सकता हूँ।" उन्होंने मेरा फोन न. लिया। आश्चर्य इस बात का है कि ठीक एक सितम्बर 2002 को अवकाश ग्रहण करने के 24 घंटों के भीतर उन्होंने मुझे फोन किया और पूछने लगे कि आप वर्धा कब आ रहे है? मैं सचमुच गद्गद् हो उठा कि इतनी याद से उन्होंने मुझे निमंत्रित किया। मैंने उन्हें कहा कि मैं जनवरी 2003 से पढ़ाना शुरू करूँगा।

मेरे निवास की व्यवस्था वर्धा के लक्ष्मी निवास के एक फ्लैट में की गई थी। मेरे पास के फ्लैट में नंदकिशोर आचार्यजी और प्रभात जी भी रहते थे। हम तीन अतिथि प्राध्यापक थे। मनोज मिश्रा अहिंसा विभाग में थे। नंदकिशोर आचार्य अहिंसा और शांति विभाग के विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। मैं और प्रभात जी साहित्य के

छात्रों विद्यार्थियों को। अहिंसा में लगभग 15 विद्यार्थी थे, स्त्री विमर्श में भी दो तीन केवल साहित्य के अंतर्गत 16-17 छात्र-छात्राएँ थी। अधिकतर बिहार तथा उत्तर प्रदेश से। विश्वविद्यालय में छोटे-छोटे छ: कमरे थे, जहाँ कथाएँ लगती थी । कोई समय-सारिणी नहीं थी, न कोई लिखित पाठ्यक्रम था। हम लोग, खुद ही पाठ्यक्रम बनाते थे। जिसको जितनी देर पढ़ाना हो, उतनी देर वह पढ़ा सकता था। उसके निकल आने के बाद दूसरे वहाँ जाते थे। हम तीनों के अलावा दर्जनों प्राध्यापक बाहर से आते थे। विश्वविद्यालय में भवन के नाम पर ग्रंथालय हेतु बनाया गया एक सभागार था।

छात्रों का चुनाव अ.भा. स्तर पर होता था। संभवत: इस बात की कल्पना शिक्षा जगत में नहीं थी कि ऐसा कोई विश्वविद्यालय बना है। पूरे विश्वविद्यालय में पहले वर्ष मुश्किल से 25-30 छात्र-छात्राएँ रही हो। हमें ले जाने के लिए रोज एक कार आ जाती थी। 10-10-30 बजे से 1.30 बजे तक अपने-अपने निवास पर लौट आते थे। दोपहर का भोजन वहीं एक पेड़ के नीचे एक कैन्टीन थी, वहाँ कर लेते थे। विद्यार्थियों को काफी सुविधाएँ थी। उनके लिए वर्धा शहर में एक भवन किराए से लिया गया था। लड़कियों के लिए अलग भवन था। इन सबको लाने ले जाने के लिए बस किराए से ली गई थी। एक माह कैसे बीता पता नहीं चला। एक बात विशेष थी। कक्षाएँ शुरू होने के पूर्व ही विश्वविद्यालय के ग्रंथालय में हजारों पुस्तकें आ चुकी थी। संभवत: ग्रंथालय में उस वक्त श्री वर्मा जी नामक एक सज्जन थे, जो बहुत ही विनम्र थे और हमेशा सहयोग की मुद्रा में खड़े रहते थे। विद्यार्थी तथा हम लोग उनसे बेहद प्रसन्न थे।

मुझे अब ठीक से याद नहीं, संभवत: एक दो वर्षों बाद अथवा तुरंत जब प्रो. गोपीनाथनजी **कुलपति** बनकर आए, मुझे फिर से दो माह के लिए आमंत्रित किया गया। अब मेरे निवास की व्यवस्था राष्ट्रभाषा प्रचार सिमति में की गई। कार्यालय अब गांधी हिल्स पर जा चुका था। कुलपति का कार्यालय भी वहीं था। दूसरी बार जब वहाँ पहुँचा तो छात्रछात्राओं की संख्या काफी बढ़ चुकी थी। महाराष्ट्र से छात्र यहाँ प्रवेश लें, इस हेतु मैंने अपने भूतपूर्व विद्यार्थियों से, जो मराठवाडों के विभिन्न कॉलेजों में हिंदी के प्राध्यापक थे, अपील की कि वे अपने विद्यार्थियों को वहाँ प्रवेश लेने के लिए कहें। कलंब जिला उस्मानाबाद के डॉ. मुकुंद गायकवाड, पीपल्स कॉलेज नांदेड की डा. रमा नवले ने विद्यार्थियों से अपील की। मराठी समाचार पत्रों में मैने वहाँ प्रवेश लेने हेतु अपील की। परिणामत: अब मराठी विद्यार्थी वहाँ दिखलाई देने लगे। इन दिनों विश्वविद्यालय के दूरस्थ संचनालय में श्री शैलेश कदम तथा संदीप सपकाळे है, वे इस दूसरी या तीसरी बैच के छात्र थे। विश्वविद्यालय में अब अनुवाद विभाग, भाषा प्रौद्योगिकी विभाग शुरू हो चुके थे। अभी भवन निर्माण का काम शुरू नहीं हुआ था। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के परिसर में ही मैं रहता था। एक दिन इसके प्रमुख डॉ. अंनतराम त्रिपाठी जी ने अपने निवास पर मुझे और वैद्य जी को बुलाया। उन्होंने बहुत गंभीरता से कहा कि “देखिए, मुझे ऐसी खबर मिली है कि विश्वविद्यालय यहाँ से दिल्ली ले जाने के

लिए उधर बहुत प्रयत्न हो रहे हैं। हम सबको लगता था कि म. गांधी की इस कर्मभूमि सेयह विश्वविद्यालय नहीं हटना चाहिए। नागपुर में संपन्नहुए पहले हिंदी सम्मेलन में तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी जी ने घोषित किया था कि म. गांधी जी की स्मृति में वर्धा में हिंदी विश्वविद्यालय की स्थापना की जाएगी। बावजूद इसके कुछ ताकतें इसे यहाँ से हटाने के लिए सक्रिय हो गई है। चूंकि उन दिनों के मेरे ही शहर के विधायक श्री विलासराव जी देशमुख महाराष्ट्रके मुख्यमंत्री थे और मुझसे अच्छे परिचित थे, इसलिए इस विश्वविद्यालय को तुंरत पानी, बिजली मुहैया करवाए, सड़क बनवा दे, इस प्रकार की अपील लेकर मैं उनसे मिला। इस संबंध में उनसे बात की । उन्होंने नागपुर के कमिशनर को पत्र लिखा। ठीक उसी प्रकार मैंने महाराष्ट्र के सभी सांसदों से अपील की कि गांधी जी के नाम पर यह विश्वविद्यालय वर्धा में रहे- इसके लिए वे प्रयत्न करें। स्मृति शेष मधुकरराव जी चौधरी ने इस विश्वविद्यालय की स्थापना का सपना देखा था और प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी जी से इस संबंध में हिंदी साहित्यसम्मेलन के स्वागताध्यक्ष के रूप में अपील की थी, वह भी सक्रिय हो गए। इन सब के प्रयत्नों से विश्वविद्यालय वर्धा में ही रहेगा-ऐसा निर्णय लिया गया। चूंकि बुनियादी जरूरतों की पूर्ति महाराष्ट्र सरकार ने कर दी थी, इसलिए अब शिकायत का कोई मौका भी नहीं था। इस विश्वविद्यालय को वर्धा में बनाए रखने में अनंतराम त्रिपाठी जी को बहुत बड़ा श्रेय चला जाता है। उन्होंने ठीक समय पर हस्तक्षेप किया और मुझे भी कुछ करने के लिए कहा। अगर उनकी इस दौड़ धूप में एक सप्ताह की भी देरी हो जाती तो यह विश्वविद्यालय आज वर्धा में दिखलाई नहीं देता। उन दिनों विश्वविद्यालय में जो भी व्याख्याता आते, उनके निवास की सुविधा राष्ट्रभाषा समिति में ही होती। अनंतराम त्रिपाठी जी उन सबकी आवाभगत ऐसे करते मानो वे उनके ही घर आए हो। हिंदी के प्रति उनकी यह निष्ठा अनन्य रही। आज आयु के 82 वर्ष में भी वे घर से अकेले रहते हुए राष्ट्रभाषा समिति के कार्य में सक्रिय है। इस विश्वविद्यालय के लिए उन्होंने तथा हेमचंद्र वैद्य जी ने जो कुछ भी किया है, उसका पता न आज के विश्वविद्यालय के अधिकारियों को है न नई पीढ़ी को । वैद्य जी ने तो इस काम के लिए खुद को पूर्णरूप से समर्पित कर दिया था। हर सप्ताह कम से कम दो तो व्याख्याता बाहर से आते। रात-बेरात, प्रात: वैद्य जी स्टेशन पर जाकर उन्हें उनके निवास पर छोड़ते। उन दिनों वैद्यजी के लिए न घर परिवार की फिक्र थी और न खान पान की। बस, एक ही धुन थी हिंदी विश्वविद्यालय । मामूली से मामूली काम से लेकर महत्वपूर्ण जिम्मेदारियों के काम भी वे करते। स्थिति ऐसी हो गई थी कि वर्धा के लोग केवल वैद्य जी के कारण ही विश्वविद्यालय को जानने लगे थे। कुछ तो कहते कि अरे, वो वैद्य जी की यूनिवर्सिटी। इतने वे विश्वविद्यालय से अद्वैत हो चुके थे।

जब मै यहाँ दूसरी बार दो माह के लिए आया, तो मुझे अध्यापन का काम बहुत कम था। साहित्य के छात्रों की मैं भारतीय साहित्य के अंतर्गत जो मराठी रचनाएँ लगी थी (अनुवादित कृतियों ययाति- श्री वि.स. खांडेकर, विजय तेंडुलकर का नाटक खामोश अदालत जारी है तथा श्री भालचंद्र नेमाडे का कोसला) पढ़ाता

था तथा अनुवाद विभाग में कुछ व्याख्यान देता था। हाँ, शोध छात्रों के मार्गदर्शन के लिए मैं खुला था। अब साहित्य विभाग में नियुक्तियाँ भी हुई थी। श्री गोपाल प्रधान, विनोद तिवारी तथा बिहार के एक नवयुवक झा वहाँ नये-नये आ चुके थे। झा तो कुछ महिनों बाद वहाँ से निकल गए। गोपाल प्रधान भी चले गए। जी. गोपीनाथन को वहाँ से हटाने की पूरी कोशिश चल रही थी।

इस बीच आरक्षित स्थानों पर धीरे-धीरे कुछ विद्यार्थी प्रवेश लेने लगे। आरंभ में महाराष्ट्रसे ही ये छात्र आते थे। पहली बैच में तो आरक्षित स्थानों पर एक भी छात्र नहीं था। उन दिनों जो नियुक्तियाँ शिक्षकेतर कर्मचारियों की हुई थीं, उनमें भी आरक्षित जगहें भरी नहीं गई थी। मैं नही जानता कि इसके क्या कारण थे?

मेरी प्रतिबद्धता हमेशा उनसे ही रही जो दलित, शोषित, पीडित एवं व्यथित हैं, तथाकथित समाज द्वारा नकारे गए हैं। उन दिनों भोपाल के डॉ. विजयबहादुर सिंह व्याख्यान देने हेतु विश्वविद्यालय में आए थे। मैंने यह तय किया डॉ. बाबासाहब आंबेडकर की जयंती विश्वविद्यालय में मनाई जाए। जी गोपीनाथन जी तुंरत तैयार हुए। आश्चर्य कि इस कार्यक्रम में सिवा कुछ दलित छात्रों के, मैं, डॉ. विजयबहादुर सिहं तथा डॉ. गोपीनाथन के अलावा नियुक्त कर्मचारियों में से कोई नहीं आया। इससे कार्यक्रम पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। कार्यक्रम हुआ। विश्वविद्यालय की स्थापना के बाद पहली बार वहाँ डॉ. बाबासाहब आंबेडकर जी की जयंती मनाई गई। यह बहुत ही साफ है कि डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर की श्रद्धा मनुष्यपर थी। उनके विचारों के केंद्र में भी मनुष्य ही था। संविधान का निर्माण इस नये मनुष्य के निर्माण के लिए हुआ है। बावजूद इसके उनके प्रीत यह उदासीनता मुझे व्यथित करने वाली थी।

जब यह तय हुआ कि अब विश्वविद्यालय वर्धा में ही रहेगा, तब भवन निर्माण का काम शुरू हो गया। उसके बाद मैं एक बार दस दिन के लिए आया, वही भारतीय साहित्य के अंतर्गत मराठी की रचनाओं को पढ़ाने के लिए। उसके बाद में पाठ्यक्रम समिति, शोध छात्र चुनाव समिति के सदस्य के रूप में आता रहा। तब भी भवन बने नहीं थे। करीब 10-12 वर्षो बाद संभवत: 2013 में पीएच.डी. की मौखिकी लेने मैं वर्धा आया। डॉ. अनवर सिद्दीकी के बहुत अनुरोध पर। श्री अनिल दुबे तथा डॉ. अनवर सिद्दीकी आरंभ में वर्धा के कॉलेजों में प्राध्यापक रूप में कार्यरत थे। डॉ. अनिल दुबे और उनकी पत्नी डॉ. सुरेखा जी से मेरे काफी स्नेहपूर्ण संबंध रहे है। आज भी है। शैलेश कदम,संदीप तो मेरे भूतपूर्व छात्र ही रहे हैं। इनके कारण मैं आज भी भावात्मक दृष्टि से वर्धा से जुड़ा हुआ हूँ । डॉ. हेमचंद्र वैद्य जी, श्री अनंतराम त्रिपाठी जी विश्वविद्यालय के नींव के पत्थर हैं। इस विश्वविद्यालय के आरंभ के करीब सात-आठ वर्ष वास्तव में वैद्य जी ही सब कुछ थे। मैं, नंदकिशोर आचार्य तथा डॉ. प्रभात इसकी पहली बैच के प्राध्यापक रहे। आचार्य जी तो बाद के कई वर्षो तक आते रहे । मेरा संबंध आरंभ के (अर्थात कक्षाएँ शुरू हो जाने के बाद के चार वर्ष) वर्षों तक ही रहा। 2013 में जब मैं आया तो परिसर में खडी भव्य इमारतें देखकर आश्चर्य चकित हुआ। मैंने सोचा भी

नही था कि उस रुखे सूखे पहाड़ों पर नंदनवन खड़ा हो जाएगा। आज यहाँ देश के विभिन्न प्रदेशों के छात्र-छात्राओं की भीड़ है। प्राध्यापकों की नियुक्तियाँ हो गई हैं। करोड़ो का खर्च हो रहा है। हिंदी के कई ज्ञात-अज्ञात लेखकों, समीक्षकों के नाम पर भवन खड़े किए गए है। हिंदी के लिए यह गौरव की बात है। अक्सर ऐसी महत्वपूर्ण संस्थाओं को पूर्ण आकार मिलने के बाद वहाँ किसी पत्थर पर उस संस्था के आरंभ के व्यक्तियों के नाम उत्कीर्ण किए जाते हैं । उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने की यह एक पद्धति होती है। मुझे नहीं पता कि वहाँ किसी पत्थर पर डॉ. हेमचंद्र वैद्य, अनंतराम त्रिपाठी, नंदकिशोर आचार्य, डॉ. प्रभात, डॉ. गोपीनाथन के नाम हैं। यूं भी नींव के पत्थरों के नामों का स्मरण होता किसे है? न भी हो तो भी अलबत्ता इन नींव के पत्थरों को इसी में सार्थकता का अनुभव होता है इस भवन के लिए वे भी कारण रहे है।

संस्मरण

काकासाहब की अंतिम यात्रा

उल्हास जाजू

शिक्षामंडल के 100 वर्ष पूर्ति निमित्त आयोजन महोत्सव पर (26 नवंबर 2014) राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी के हाथों काकासाहब का सम्मान हुआ। सार्वजनिक जीवन में रमें, नैतिकता का आग्रह और आवश्यक पड़े तो सत्याग्रह की भूमिका निरंतर रखने वाले काकासाहब ने संस्थाओं के पदों से सदस्यत्व से मुक्ति लेना तो अनेक वर्षो से आरंभ कर दिया था। सारी संस्थायें सलाहकार के रूप में उन्हें आमंत्रित करती रही। व्यावहारिक आदर्शवादी की ख्याति पाने वाले काकासाहब की हर संस्था के बारे में भूमिका रही कि नयी पीढ़ी तैयार करने की जिम्मेदारी और उसे अपनी आँख के सामने सारा सौंप देने का कर्तव्य हर संस्था प्रणेता का होना चाहिये।

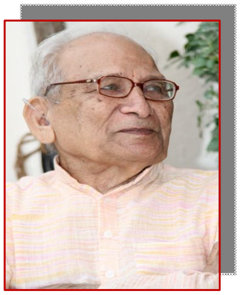

शिक्षामंडल वर्धा आखिरी संस्थाथी जिसकी ट्रस्टीशिप से जनवरी 2014 में काकासाहब ने मुक्ति ले ली। अब शरीर की मर्यादायें आ गयी थी। बिना सहारा लिये चलने में लुढ़क जाने का अंदेशा था। घर के बाहर के आंगन में घूमना कम होता गया। Wheel Chair पर घूमना मन को रास नहीं आता था।

शरीर साथ नहीं देता, कान कमजोर हो रहे हैं, पढ़ना भी बहुत नहीं होता, समय काटना पडता हैं, इसके अहसास से अब मृत्यु की इच्छा का निर्माण हुआ। अब मानव जीवन का उद्देश्य नहीं बचा हैं, और बिना उद्देश्य जीने में क्या अर्थ है, ऐसा कहते हुये 'मैं' अब खाना धीरे-धीरे छोड़ दूंगा ऐसा मानस भी उन्होंने प्रकट किया। वर्तमान पथ में वृद्धावस्था / इच्छामरण से संबंधित जो लेख आते, उन्हेंनिकालकर मुझे और बाई को देते और उस पर सोचने कहते। 'मुझे देहदान करना हैं' ऐसी इच्छा प्रकट की और देहदान के संकल्प पर मेरी सही ले लो इसका आग्रह करते। यह मुझे, बाई को, किरण को, सुहास को, शुभदा को अलग-अलग समय पर भी कहा। बाई और बड़ीबाई दोनों को देहदान करें ऐसी सलाह दी। एक दिन मुझे पूछा- "मेरे देहदान के संकल्पके बारे में तुम्हारी भूमिका क्या हैं?" मैंने उत्तर दिया- "यदि आप पहले गये तो बाई की इच्छानुसार निर्णय लूंगा।यदि बाई पहले गयी तो आपकी ईच्छानुसार निर्णय लेंगे।"

उनकी मन:स्थिति स्थिर होने में मदद हो इसलिये उन्हें बालविजय की 'बिनोबाचा ब्रह्मनिर्वाण' पुस्तक पढ़ने दी और नीचे लिखे विनोबा के वचन की ओर ध्यान आकर्षित किया-

"वैराग्यपूर्वक और उत्साह से प्रेमपूर्वक सेवा करते रहना और देह गिरने तक मरने की वासना न रखते हुये अहंकार को खत्म कर प्रारब्धवश जीते रहना, यह जागृत पुरूष का लक्षण।"

शांति और समाधान से मृत्यु आये इसकी साधना हम करें, यही हमारे हाथ है। विनोबा जैसी योगमृत्यु का वरण करने का सामर्थ्य हममें नही।

डॉ. अतुल गावंडे की किताब “Being Mortal” किताब में वृद्धावस्था के प्रश्नों को समझते हुये मृत्यु को वरण करने के लिये जो व्यवस्था पाश्चात्य समाज ने बैठायी है, उसका अनुभव लिखा है। इस पुस्तक को पढ़कर हमारे पौर्वात्य संस्कृति के माहौल में इस यक्ष प्रश्न के विचारणीय मुद्दों की चर्चा करते लिखा मेरा एक लेख मैने उन्हें पढ़ने दिया। उन्होंने कोई टिप्पणी नहीं की।

बढ़ती शारीरिक असमर्थता के साथ उनकी शरीरिक भाषा से प्रकट होने वाली परनिर्भरता की वेदना का दर्शन होता। Wheel Chair पर घर में भी घूमना पडना, घर में घूमते हुये आधार की जरूरत महसूस करना, संडास-पेशाब के लिये कमोड पर बैठते समय दो लोगों को आधार देने की आवश्यकता पडना.......... जैसे अनुभवों की वेदना झलकती। ‘तुम्हें मेरा सारा करना पडता है’, इसका खेद प्रकट होता। ‘हम सब किस लिये हैं?, यह काकासाहब से कहते। हमारी सेवा लेनी पड़ती है इसका यदि आपको खेद होता हो, तो हमें वेदना नही होगी क्या?’ धीरे-धीरे उन्होंने हमारी सेवा स्वीकारी।

घर में सेवक के रूप् में तीन बहने –पूजा, वंदना और रात को पुलगांव से आने वाली किरण, तथा सुबह 10 से 12 तक काकासाहब-बाई का मानस पुत्र किसन, दोपहर12 से शाम 6तक वसंता और रात में बंडू, बडेप्रेम से, कृतज्ञता से कर्तव्यबोध से उपलब्ध रहते। घर के बेटे-बहुओं, पोती पोतों में से एक हरदम उपस्थित रहते थे ही। बाई को भी disc-prolaps के कारण foot drop होने की वजह से उठने और चलाने में सहायता लगती। अत: बाई और काकासाहब दोनों के पलंग आमने-सामने होते। काकासाहब की हर हलचल पर बाई की नजर होती और उसकी विद्युतीकृत बेल बज उठती।

जून 2014 से सितंबर तक एक वेदनामयी पर्व रहा। काकासाहब को आये acute delirium को नियंत्रित करते-करते हम दम छांटने लगे। उनकी बैचनी, रात-रात भर जागना, और उस अवस्था की वेदनायें हमें सहन नहीं होती। काकासाहब को हम वेदनामुक्त और शांत-समाधानी जीवन न दे सके तो उसमें हमारे चिकित्सीय पेशे की पराजय ही नजर आती। बडी मुश्किल से वह वेदना-पर्व समाप्त हुआ।

अक्टूबर मध्य से बैचेनी तो समाप्त हो गयी, रात को नीद भी आने लगी, परंतु परनिर्भरता बढ़ती गयी। दिन –ब- दिन काकासाहब कुछ सामान सिमटते चले गये। नवंबर आरंभ तक बोलना कम हो गया, शांत बैठे रहते थे लेटते, सुझाने पर चरखे पर सूत कातने में साथ देते- कारण बाई और बड़ी बाई के लिये साडी का सूत जो उन्हें कातकर देना था।

जाजूवाडी की बहुएं शाम को उन्हें खाना खिलाने और प्रार्थना में शामिल होने आती। अब धीरे-धीरे दवाईयाँ कम कर दी गयी। 26 सितंबर तक दोनो समय अच्छे से भोजन ग्रहण करते रहे।

26 नवंबर को मितभाषी काकासाहब ने मुझे कहा- ‘‘अब सब खतम कर दो’’। बार-बार पूछने पर भी वे क्या चाह रहे हैं यह स्पष्ट नहीं हुआ। 26 नवंबर शाम से खाना खिलाते समय वे निगलने ही तैयार नही

हुए। उनके artificial clenture निकालना भी एक परीक्षा थी। द्रव्य रूप में कुछ पिलाने के प्रयत्न असफल हुए। एक चम्मच पानी भी मुँह में भरे रहते और उसे बाहर निकाल देते। जबरदस्ती करते तो उन्हें ‘ इसका’ लगता। गले की जाँच करने पर कोई Paralysis (निगलने का) नही था। पानी के घूंट पी सकते थे। परंतु पीने से ही नकार था। हाथ जोड़ देते।

‘अब खतम कर दो ’ हमारी समझ में आ गया। वे अपने निग्रह पर अडिग रहे। करीब-करीब मौनव्रत तो अंगीकार कर ही लिया था।

4दिन के अनुभव के बाद जाजूबाडी में उपस्थित जाजू-परिवार, बाई-बड़ीबाई के साथ इकटठा बैठा। काकासाहब के निग्रह पर क्या भूमिका ली जाये? काकासाहब की इच्छामरण को आलिंगन देने की मानसिकता हम जानते ही थे। मनुष्य यदि जीवन के उद्देश्य को न निभा पायें तो शरीर छूट जाना चाहिए, इस उदात्त विचार को हम सब जानते थे। हमने विनोबा को देखा और अनुभव किया था। परंतु विनोबा जैसी योगमृत्यु की कला कहॉं जानते थे? इतना हम जरूर समझते थे कि शांति से आयी मृत्यु यह उपचार का अपयश नहीं है, उत्तम यश है। काकासाहब वेदना मुक्त थे, शांत थे, निग्रह करने की क्षमता का दर्शन दिला रहे थे।

हमें याद आये बड़े- काकासाहब उन्हें advanced parkinsonism था। एक दिन आया जब पूछा “क्या करना है,।” बड़ी- बाई का उत्तर था- “बेटे को क्या लगताहैं?” मेरा प्रत्युत्तर था- “भगवान कहता है मुझे ना दो।’ ’ बड़ीबाई ने कहा ‘ठीक है’। बडे- काकासाहब ने ७ दिन लिये और वेदनामुक्त मुक्ति पायी।

परिवार ने निर्णय लिया कि निसर्ग के संकेतो का सम्मान करेंगे। काकासाहब के निग्रह की अवहेलना नही करेंगे। हम यही चाहते है न कि उन्हें वेदनामुक्त, शांत मृत्यु आये? तो फिर देहमुक्ति का स्वागत ही करेंगे।

हमारे दैनंदिन व्यवहार उसी सहजता से शुरू रहें। घर का माहौल दु:ख का ना हो। परिवार हर क्षण उनके पास रहेगा ही। निसर्ग के संकेत को स्वीकार कर रहे हैं ऐसी आचार-संहिता पालों। जीवनभर उन्होंने स्नेह साधना की है, वह हमारे बर्ताव से नजर आयेगी ही। मृत्यु परमसखा है उसकी अनुभूति हम हमारे मन में संजोये।

६/१२/१५

पानी भी वर्ज्य करने के बाद का ८वां दिन

पुस्तक समीक्षा

अमरत्व की तलाश

उल्लास जाजू

डॉ. अतुल गावंडे लिखित "Being Mortal" पुस्तक में उन्होंने मृत्यु के आभास के साथ उभरने वाली मनोभावनाओं का विश्लेषण किया है। मृत्यु का आभास पाये व्यक्ति मृत्यु स्वीकार सके, इसलिये उभारी गयी गयी समाज-व्यवस्था का मूल्यांकन सादर किया है। उनका विवरण पाश्यात्य संस्कृति में जीने वाली वृद्ध पीढ़ी के लिये है। उनके संपर्क में आये असाध्य बीमार तथा अपने परिवार की वृद्ध पीढ़ी का अस्मिता संवर्धन के साथ यदि अंतिम पर्व बीताना हो,तो उभरने वाली दुविधा सामने रखी है।

अतुल गावंडे के चुने उदाहरण, पाश्चात्य संस्कृति के उन सधन समाज के है जहाँ सामाजिक सुरक्षा के रूप में हर साधन सुविधा नि:शुल्कउपलब्ध है या आर्थिक विवेचना उनके आडे नहीं आती। यह समाज व्यक्तिगत स्वातंत्र्य को पूजता है। उनकी जीवन-पद्धति (Life style) भी व्यक्ति केंद्रित (individualistic) मनोभूमिका में ढली हैं।

ऐसे समाज में जब बीमारी के कारण या वृद्धावस्था के कारण परावलंबिता का ग्रहण लगता हैं तब आधार देने के लिये समाज ने व्यवस्था भी बैठायी है। नर्सिंग होम की स्वास्थ्य-सुधार तथा सुरक्षितता (Safety) की रचना एक छोर पर, तो उसे ज्यादा घरेलू बनाने के लिये सहयोग जीवन/पूरक जीवन की संस्थागत रचना, और स्वास्थ-सुधार की आशा समाप्त होने पर मृत्यु की मानसिकता को स्वीकार करने का ethos निर्माण करने में प्रयत्नशील Hospice की रचना अंतिम छोर पर, ऐसी मालिका ही उत्क्रांतित हुआी है।

एकल परिवार से जुड़े इस समाज में व्यक्तिगत उपेक्षा (Neglect) और संस्थागत देखभाल की संस्थागत रचना (Instituitionaliseal structure for care) ही निर्माण होनी थी, कारण पौर्वात्य संस्कृति के संयुक्तपरिवार का आधार ही विघटित हो चुका था। बुद्धिकी उत्क्रांति के साथ मनुष्य -योनि से निर्माण हुआ स्वातंत्र्य वासना (Instinet of Freed am), पाश्यात्य संस्कृति के व्यक्ति स्वातंत्र्य होती। परिणामत: परावलंबी Automatons को मन:शांतिके मार्ग पर मोडना, अहंकार (सात्विक रूप -अस्मिता) अबाधित रखते हुआ, टेढ़ी खीर होती है।

मृत्यु की भयमुक्ति का ध्रुवतारा पाने के लिये आध्यात्मिक साधना की पराकाष्ठा तक पहुँचने वाले विरले ही होते हैं उदा. दधिची, ज्ञानेश्वर, विनोबा। इनका जीवन चरित्र देखें तो ध्यान में आता हैं कि इनकी आत्मा (चेतन तत्व) देहमुक्ति (जड़मुक्ति) के पडाव तक पहुँच चुकी थी।इन्होंने किसी उदात्त ध्येय (Purpose) के लिये ही मनुष्य देह धारण की थी। अत: इस उदात्त सांस्कृतिक वासना की परिपूर्ति के लिए वे कार्यरत रहे। और जहाँ पाया कि वह ध्येय पूरा

हो चुका है,या प्राप्त सामाजिक माहौल में एक हद से ज्यादा अब आरोहण नहीं किया जा सकता, तो उन्होंने इच्छामरण स्वीकार कर देहमुक्ति साध ली। गांधी देहमुक्ति की मनोभूमिका तक पहुँच चुके थे, उन्हें देह मुक्ति दिलाने के लिए गोडसे जैसा असांस्कृतिक तत्व निमित्त बना। साने गुरूजी समाज-परिवर्तन की आकांक्षाओं से जब निराश हुए तो उन्होंने नींद की गोलियां लेकर देहमुक्ति साध ली। जन्मके साथ निर्मित हुई जीजिविषा (wife to live) , ध्येयप्राप्ति के पड़ाव पर थी, शरीर जीर्ण जो चुका है यह मनोभूमिका तक पहुँचता है।

आध्यात्मिकता की इस ऊँचाई तक सर्वसामान्य व्यक्ति नहीं पहुँच पाता। परंतु जिन्होंने अपने जीवन का पाथेय समाजाथिपुरण बनाया, कृति-भक्ति में रमें, अनासक्ति (कर्मफल त्याग) की ओर कदम बढ़ाए, इन व्यक्तियों में भी उद्देश्यहीन जीवन के आभास से ही (परावलंबन न हो तो भी) मृत्यु की इच्छा निर्माण होते हम देख रहे हैं। पाश्चात्य समाज की तरह हमारा पौर्वात्य संस्कृति का समाज उन्हें वृद्धाश्रम में नहीं भेजता है। वृद्धाश्रम का निर्माण ही कुटुंब व्यवस्था विघटित होने का लक्षण हैं। बडी पीढ़ी के प्रति हमारे मानस में reverence to time होता है और reverence to Life था। हम उन्हें एकांशी नहीं जीने देते, ना ही उनकी उपेक्षा (Neglect) करते हैं। पाश्चात्य समाज की एकांगिता से निर्माण होने वाले अकेलापन का समाधान हम बृहद्-कुटुंब की रिश्तेदारी में पाते हैं। कटुंबियों से प्रकटी देखभाल, जुड़ाव, समझदारी और जिम्मेदारी का भाव हमें आश्रितावस्था में भी सुकून देता हैं। मैं अभी भी सार्थक जी सकता हूँ, मेरी भूमिका अभी भी हैं, इसका अहसास ही जीवन का उत्तरार्ध की श्रेयसता का समाधान प्रदान करता है। इसीलिये वृद्ध-पीढ़ी अपने अधिकार उत्तरार्धियों को सौंपकर अपनी कर्तव्यपूर्ति की पूर्णता महसूस करती हैं। कुटुंब की यह पहचान है।

कुटंब-रथ के सारध्य पर विराजमान रही बडी पीढ़ी को समर्पण की राह पर चलने की साधना इस संक्रांति-पर्व आवश्यकता होती हैं, वैसे ही नयी-पीढ़ी के स्वावलंबन की क्षमता के साथ उभरी व्यक्ति-स्वातंत्र्य की वासना, अहंकार के साथ स्वैराचार के मार्ग पर न मुड जायें इसकी लक्ष्मण रेखा (संयम, मर्यादा) भी बांधना संयुक्तपरिवार को सीखना होता है। बडी-पीढ़ी की अस्मिता को धक्का न लगे, आश्रित जीवन की टीस न उभरे और परिवार में बडी-पीढ़ी के प्रति कृतकृत्यता उत्तरोत्तर बढ़ती जाये, इस कुटुंब-साधना को उतनी ही प्रगल्भता से समझना होगा। संयुक्त-परिवार की साधना यह--- साधना की अग्नि परीक्षा माननी चाहिये।

पाश्चात्य संस्कृति के समाज से उभरी नर्सिंग होम, पूरकजीवन/सहयोगी तथा Home Hospice की उत्तरोत्तर अनौपचारिक होने वाली रचना, अंतिमत: संस्था प्रवण (Inariruirionalial) व्यवस्था हैं। हर रचना के नियम होते हैं। नियम पाले जायें इसका आग्रह होता है। यह रचनाएं कितनी पेशेवर ढंग से क्यों न चलायी जायें, पर वह आदेशों पर चलती हैं, संकेतों पर नहीं। संस्था का सेवक वर्ग किस हद तक व्यक्ति-विशेष से रिश्ता जोड़ सकेगा इसकी भी मर्यादा होती हैं। अत: उत्तरोत्तर अनौपचारिक रचना गढ़ने के पयत्नों की एक

मर्यादा रहने ही वाली है। इन रचनाओं का उजला पक्ष है कि वे सुरक्षा जरूर प्रदान करती हैं।

जिस समाज में यह सुरक्षा व्यवस्था उत्क्रांतित नहीं हो पायी हैं, ऐसे समाज में वार्धव्य/बीमारी की परावलंबिता के साथ आने वाली असुरक्षिता तथा Loneliness (अकेलापन) की मनो वेदना सहनीय बनाने का एकमात्र आधार, स्वयं द्वारा जीवनभर सींचा परिवार ही होता है। मात्र आर्थिक विवेचना के माहौल में आश्रित व्यक्तियों के सेवासाधन जुटाना यदि कठिन हो जाये, सेवा के लिये निकट सानिध्य न दे सकें, तो अकेलापन निराशा की खाई में ले जा सकता है। असाध्य रोगों के साथ जुड़ी शारीरिक वेदनाएं कमर तोड़ देती है। जहाँ पल-पल गिनकर बिताना पड़े वहाँ मानसिक शांति तो दूभर ही है।

प्रगल्भ व्यक्ति के लिये यह उद्देश्यहीन जीना भी अशांति का कारण बनता है। कृतिभक्ति पर जीवन से जोडा लोकसंग्रह, ऐसे मौके पर मन को सुकून दे सकता है। समय काटना न पड़े, किसी रुचि के कार्य में लगा सकें, ऐसा आयोजन आवश्यक है। परिवार हमें चाहता है, इज्जत देता है, हमारे बिना अधूरापना महसूस करता है, इसका अहसास उन्हें माहौल से प्राप्त होना चाहिये। विनोबाजी ने सुझाये तीन गृहदेवता-चरखा, चक्की और चूल्हा में से शरीस्श्रम प्रधान चक्की न भी अपना सकें। चरखा और चूल्हा तो आरध्य सहज बन सकते है। खुद से काते वस्त्रों की अपने परिवार को दी भेंट से प्राप्त समाधान और खुद की देखरेख में बनाये भोजन खिलाने का आनंद तो मिलता ही है। ऐसे वृद्धों का Anonym का आयोजन समवेदनाओं की सहभागिता से आश्रय तो पा ही सकता है।

पौर्वात्य संस्कृति में कौटुंबिक कर्तव्यों की समाप्ति पर वानप्रस्थश्रमी, समाज के प्रति उत्तर दायित्व निभाने अग्रसर होना चाहिये ऐसा संकेत है। मानव जीवन के आरोहण का यह कदम हैं। समाज जीवन का उत्तरोत्तर जीवन समर्पित कर शरीर जीर्ण होने लगे तो सन्यासश्रम की मनोभूमिका तक उपर उठना चाहिए ऐसा निर्देश है। विनोबा के शब्दों में कर्मसन्यास ले कर सूक्ष्म में प्रवेश करना। यानि आत्मबल की साधना से प्रारब्ध की राह देखते हुये देहत्याग की मानसिकता संजोना। देहत्याग के पड़ाव पर व्यक्ति उसे किस मानसिकता से स्वीकारता है, उसमें मानव-जीवन का आरोहन परिलक्षित होता है।

मेरे वैद्यकीय क्षेत्र के अनुभवों में सर्वसामान्य देहात का व्यक्ति भी कितनी सहजता से मृत्यु को स्वीकार सकता है, यह मैने अनुभूति पर उतारा हैं। इस अंतिम पर्व में सोद्देश्यपूर्ण जीवन कैसे बिताया जा सकता है इसकी खोज आवश्यक है। Positive Thinking (सकारात्मक सोच) को स्वीकारना और उसका सातत्य बनाये रखना एक परीक्षा ही होगी।

दिक्कत आ सकती है जब शारीतिक व्याधियाँ वेदनामयी हों। ऐसे समय चिकित्सा शास्त्र की मदद से उसे सुसहय बनाना ही होगा। वेदना निवारण न कर पायें तो शरीर जल्दी छुड़ा ले की आराधना स्वाभाविक ढंग से उभरती है। वेदना रहित मृत्यु (वह भी क्षणभर में) की प्रार्थना निसर्ग न माने तो मृत्यु तो मृत्यु को आलिंगन कैसे दिया जाये, इस यक्ष-प्रश्न का हल दृष्टिगोचर नहीं होता।

सम्मानपूर्वक मृत्यु(Dying with dignity) की संकल्पना प्रगल्भ व्यक्ति को कितनी भी जँचती हों, सामाजिक स्तर पर उसकी मान्यता सहज साध्य नही। उन देशों में भी जहाँ उसे कानूनन आधार मिला हो विनोबा के समान योगमृत्यु वरण करने की क्षमता भी नहीं होती। आदिकाल में समाज ने देहत्याग की कोई व्यवस्था गढ़ी हो तो उसका अभ्यास करना होगा। वह व्यवस्था वेदनामुक्त और क्रूरता मुक्त होना आवश्यक है।

हम इस उदात्त मानसिकता की साधना वानप्रस्थी जीवन से ही आरंभ करें, अंतिम क्षण तक जीवन उद्देश्य को संजोये रखें और प्रारब्ध पर समर्पित होने की मानसिकता बनाये रखें, यही संकेत इस चितंन से निकलता है।

आलेख

हिंदी में मिश्रक्रिया

अनिल कुमार पाण्डेय

क्रिया पद के दो मुख्य घटक (मुख्य और सहायक क्रिया) होते हैं। सहायक क्रिया के अंतर्गत है, हैं, हो, था, थे, थी, गा, गे, गी आदि को कालवाचक माना गया है। हिंदी में प्रयुक्त योजक क्रियाओं को सहायक क्रिया नहीं कहा जा सकता। जैसे- वह डॉक्टर है, मुझे काम है, ईश्वर है, वहाँ पेड़ है। इन वाक्यों में 'है' योजक क्रिया के द्वारा वाक्य में उपस्थिति, अवस्थिति, अस्तित्व आदि के भाव का बोध होता है। यह क्रिया मुख्य क्रिया के रूप में प्रकार्य कर रही होती है। इसलिए मुख्य क्रिया एवं सहायक क्रिया दोनों ही पक्षों का प्रतिनिधित्व योजक क्रिया वाक्य में करती है। इस क्रिया का काल परिवर्तन संभव है। जैसे- है, था (हैगा, हैगी, हैंगे के बदले) होगा, होगी, होंगे का प्रयोग वाक्य में हो सकता है। यह 'है' क्रिया, 'होना' क्रिया से भिन्न है। 'होना' क्रिया में गति है जबकि 'है' योजक क्रिया में गति नहीं होती यह स्थितिपरक है। 'होना' क्रिया किसी भी संज्ञा अथवा विशेषण के साथ जुडकर मिश्र क्रिया का निर्माण कर सकती है। जैसे- अच्छा होना, स्वीकार्य होना, बात होना, कार्य होना आदि। 'होना' क्रिया वाक्य में कभी-कभी मुख्य क्रिया के रूप में उपस्थिति का बोध कराती है। जैसे-

वह वहाँ होता है।

यह सब कुछ वहाँ होता है जिसके बारे में हम सोच भी नहीं सकते।

'है' योजक क्रिया अकेले मुख्य क्रिया के रूप में प्रयुक्त हो सकती है। जबकि 'हो' धातु अकेले मुख्य क्रिया के रूप में प्रयुक्त नहीं हो सकती। हिंदी में केवल तुम सर्वनाम वाक्य संरचना में 'हो' क्रिया प्रयुक्त होती है। जैसे-

तुम कहाँ हो?

- तुम्हारा शुभ हो।
- तुम्हें कुछ काम हो तो जाओ।

इन तीनों वाक्यों में (कहाँ हो) का 'हो' योजक क्रिया है जबकि शेष दोनों 'शुभ हो' एवं 'काम हो' मिश्र क्रिया है।

मिश्रक्रिया की संरचना दो घटकों (संज्ञा अथवा विशेषण एवं क्रियांगी) के योग से होती है। प्रथम घटक को क्रियामूल (Pre-verb) एवं द्वितीय घटक को क्रियाकर (Verbalizer) कहा गया है। जैसे – स्वीकार करना, इंतजार करना, तारीफ होना/ करना, मालूम होना/ करना आदि।

हिंदी की मिश्रक्रिया संरचना अंग्रेजी में सरल क्रिया संरचना होती है यथा- शादी करना, To marry, प्यार करना To love । हिंदी में सभी संज्ञा अथवा विशेषण मिश्रक्रिया के प्रथम घटक (क्रियामूल) के रूप

में कार्य नहीं करते और न ही यह निर्धारण किया जा सकता है कि अमुक संज्ञा अथवा विशेषण प्रथम घटक (क्रियामूल) का स्थान लेंगे। मिश्रक्रियाओं को रचने में अधिकांश विशेषण एवं अमूर्त संज्ञा की भूमिका लक्षित होती है । संज्ञा अथवा विशेषण के अतिरिक्त पदों का ऐसा वर्ग भी है, जो क्रिया मूल के रूप में प्रयुक्त होता है, जिसे वैयाकरणों ने क्रियांगी कहा है। (सूरजभान सिंह, हिंदी का वाक्यात्मक व्याकरण, 2000-49)

क्रियांगी केवल क्रिया के अंग के रूप में प्रयुक्त हो सकते हैं, इनका स्वतंत्र प्रयोग नहीं होता। जैसे- मालूम, स्वीकार, मना, पेश, खत्म, समाप्त, समापन आदि।

'करना' एवं होना क्रियाकारों के अतिरिक्त कुछ क्रियाओं का प्रयोग क्रियाकरों के रूप में होता है परंतु अधिकांश मुहावरा अर्थ में इनके प्रयोग मिलते हैं – धोखा खाना, धूस खाना, डिंग हाँकना, धक्का मारना, थप्पड़ मारना, सलाम ठोकना, सलाम बजाना, चूना लगाना, चकमा देना आदि।

'ने' परिवेश में मिश्रक्रिया के प्रथम घटक (क्रियामूल) के लिंग, वचन के अनुसार ही क्रियाकर के लिंग वचन का निर्धारण होता है । जैसे – उसने मेरी परीक्षा ली । इस वाक्य में 'परीक्षा' संज्ञापद स्त्रीलिंग एकवचन के अनुरूप क्रियाकर (ले से ली) स्त्रीलिंग, एकवचन में प्रयुक्त हो रहा है । मिश्रक्रिया का प्रथम घटक (क्रिया मूल) वाक्य के भीतर कर्म की भूमिका में भी हो सकता है। जैसे – उसने परीक्षा दी / राम ने काम किया। उसने आत्महत्या की।

इन वाक्यों में क्रियामूल के रूप में 'परीक्षा' 'काम' एवं 'आत्महत्या' संज्ञा शब्द हैं और वाक्य में कर्म की भूमिका में भी विद्यमान हैं।

कुछ मिश्रक्रियाएँ प्राकृतिक व्यापार या घटना को सूचित करती हैं। ऐसी ही क्रियाएँ मूलत: अकर्मक होती हैं, जो किसी कर्ता की आकांक्षा न करके स्वयं ही क्रियामूल के रूप में कर्ता की भूमिका में होती हैं। जैसे –'बारिश हो रही है।' 'बाढ़ आ गयी'। 'गर्मी बढ़ रही है'। 'सर्दी पड़ने लगी'। इन वाक्यों में 'बारिश', बाढ़, गर्मी एवं सर्दी शब्द क्रियामूल के साथ-साथ वाक्य में कर्ता का कार्य कर रहे हैं।

कुछ वैयाकरणों (डॉ. सूरजभान सिंह) ने संज्ञा+कर संरचना (मिश्रक्रियाओं) को प्रकार्यात्मक एवं विशेषण+ कर अथवा क्रियांगी+कर संरचना को अप्रकार्यात्मक कहा है । इसका आधार अन्विति बताया है ।किसी वाक्य में प्रयुक्त किसी घटक की क्रिया के साथ अन्विति तभी तक होती है, जब तक उन घटकों के साथ कोई परसर्ग (कारक चिह्न) न लगा हो । परसर्ग युक्त घटक के साथ क्रिया की अन्विति नहीं हो सकती। जैसे – राम रोटी खा रहा है (कर्ता के साथ अन्विति) । राम ने रोटी खाई (कर्म के साथ अन्विति) । राम ने रोटी को फेंक दिया । (किसी भी घटक के साथ अन्विति नहीं।) (नोट – जब क्रिया की अन्विति कर्ता अथवा कर्म के साथ नहीं होती तब क्रिया पुल्लिंग एकवचन में होती है।)

मिश्रक्रिया के द्वितीय घटक के रूप में 'कर' (सकर्मक) के स्थान पर 'हो' (अकर्मक) क्रिया का प्रयोग संभव है। परंतु कुछ वाक्यात्मक प्रक्रियाओं तक ही इनका प्रयोग संभव है । उदाहरणार्थ – मालूम करना-मालूम होना, ठीक करना-ठीक होना, काम करना-काम होना, व्यापार करना- व्यापार होना आदि के दोनों ही रूप मिलते हैं परंतु कुछ क्रियाकरों के सकर्मक रूप अधिक मिलते हैं तो कुछ क्रियाकरों के अकर्मक रूप। ऐसे वाक्य में प्रयुक्त कर्ता में कुछ रूपांतरण (कर्ता लोप एवं को-कर्ता रूपांतरण) होते हैं।

जिस प्रकार सर्दी, गर्मी, बारिश, मृत्यु, जन्म आदि क्रिया मूल के साथ सकर्मक (करना) क्रियाकरों का प्रयोग नहीं होता उसी प्रकार दान, गुलामी, चापलूसी, यात्रा, सफर क्रियामूल के साथ अकर्मक (होना) क्रियाकरों का प्रयोग बहुधा नहीं होता। इनके अतिरिक्त कुछ रूढ़ प्रयोग भी मिलते हैं। 'कर'/हो क्रियाकर के स्थान पर अन्य क्रियाकरों का प्रयोग होता है, जैसे-डींग हाँकना/ मारना, घूस खाना, परेशानी उठाना, दिखाई पड़ना, सुनाई देना/ पड़ना, धोखा खाना, थप्पड़ मारना, डांट लगाना आदि।

कुछ मिश्रक्रियाओं के उदहारण नीचे दिए गए हैं–

संज्ञा+क्रियाकर

बात करना/होना, शादी करना/ होना, प्यार करना/होना, नफरत करना/होना, अधिकार करना/होना, विश्वास करना/होना, स्मरण करना/होना, याद करना/होना, भोजन करना/होना, ऐयाशी करना, गलती करना/होना, बारिश होना, सर्दी होना, गर्मी पड़ना/होना, अकाल पड़ना, बर्फ पड़ना, बाढ़ आना आदि।

विशेषण +क्रियाकर

तैयार करना/होना, जाहिर करना/होना, ठीक करना/होना, अच्छा करना/होना, बुरा करना/होना, सूचित करना, जमा करना/होना, स्पष्ट करना, सुंदर लगना, संतुष्ट करना/होना, बंद करना, सिद्ध करना, प्रमाणिक करना, व्यावहारिक होना, प्रांतीय होना, जाहिर करना, उपस्थित करना/होना आदि।

क्रियांगी+क्रियाकर

स्वीकार करना, मना करना, मालूम करना/होना, खत्म करना, शुरू करना, आरंभ करना, पेश करना, पता करना, वहन करना, देर करना।

हिंदी में प्रयुक्त मुहावरे मिश्रक्रिया होते हैं। जैसे- चूना लगाना, नौ दो ग्यारह होना, आखें चुराना, दिल लगाना, पेट पोंछना, मात देना, मक्खन लगाना आदि। वाक्य में 'चूना लगाना' यदि मुहावरा अर्थ में प्रयुक्त नहीं है तो निःसंदेह वहाँ मिश्रक्रिया न होकर सरल क्रिया होगी। जैसे- "नौकर दिवाल पर चूना लगा रहा है" इस वाक्य में क्रियापद है 'लगा रहा है'।'लगाना'क्रिया मुख्यक्रिया के रूप में कार्य कर रही होती है।

हिंदी में मिश्रक्रिया एवं सरलक्रिया के बीच एक सैद्धांतिक अंतराल होता है। इसे ठीकठीक समझने एवं नियमबद्ध करने की आवश्यकता है जो भाषा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उपयोगी सिद्ध हो सके।

आलेख

चेन्नई बाढ़ की विभीषिका

दीपमाला त्रिपाठी

चेन्नई को दक्षिण भारत मे विकास और तरक्की का पर्याय माना जाता रहा है। जो इस समय सदी की भीषणतम बाढ़ से त्राहि-त्राहि कर रहा है । जलवायु परिवर्तन वार्ताओं में आरोपो-प्रत्यारोपों से घिरे नेताओं ने अपनी आदत और निहित स्वार्थ के कारण बाढ़ को मानव निर्मित पक्ष के बजाय इसे ग्लोबल वार्मिंग का परिणाम मान जोड़ रहे है। जब से बिना सोचे समझे किये गये विकास से हो रहे कार्बन उत्सर्जन और पृथ्वी की सतह गरमाने के मुद्दे उभरे है, देश के शीर्ष नेताओं और प्रशासक पुरानी आपदाओं में प्रकटे अपने मौकापरस्त परस्पर दोषारोपण तथा नकारापन को दरकिनार कर हर नई कुदरती आपदा का दोष सिर्फ प्रकृति पर डालने लगें हैं, लेकिन याद रखने वाली बात यह है कि बाढ़ कोई अचानक आ जाने वाली विपत्ति नहीं है । देश के हर भाग में मानसून आनेका समय और भारी बारिश की सम्भावनाएं लगभग तय है ।यह सर्वविदित तथ्य है कि तमिलनाडु में प्रत्येक वर्ष बंगाल की खाड़ी से गुजरता हुआ मानसून तेज बौछारें लाता है और कई बार चक्रवाती तूफान भी। 1969, 76, 85, 96, 2005 और 2015 में दोनों के मिलाप ने विगत छह दशकों में लगातार भारी तबाही मचाई भी है, लेकिन जब बाढ़ आई तो हर बार शोर ऐसा होता जैसे यह असंभावित था ।सच तो यह है कि मौसम का मिजाज कम बदला है ,बदली है तो हमारी राष्ट्रीय प्राथमिकतायें और मानसून से निपटने का नजरिया अधिक बदलते गये है। देश के सभी राज्यों कश्मीर से लेकर उत्तराखंड तक और पंजाब से तमिलनाडुतक हर राज्य की सरकारें सबसे तेज सम्पन्न बनने वाली सरकार का तमगा जीत लेना चाहती है। उत्तराखंड की भारी तबाही से सबक सीखने के बजाय प्रकृति को ठेंगा दिखाकर नदियों और पहाड़ों पर अंधाधुंध निर्माण कार्य किये जा रहे है। उसी श्रृंखला मे तमिलनाडू में बाढ़ से हुई तबाही है। तमाम रिर्पोटों से जाहिर है कि भारी बारिश की पूर्व सूचनाओं के बाद भी सही तैयारी समय रहते नहीं की गई और जल की निकासी तथा नदियों की जलधाराओं के कुदरती बहाव के नियमों को ताक पर धर कर अंधाधुंध शहरी विकास होता रहा है। इस कारण बाढ़ की चपेट मे शहर पूरी तरह आ गया। लापरवाह प्रशासन के देखते-देखते तमाम सड़कें, फाटकदार भव्य कालोनियों, बड़े-बड़े भारतीय और विदेशी उपक्रमों की इमारतें,त्वरित ट्रान्सपोर्ट मार्ग और रेल-लाईने, दफ्तर,घर,हवाईअड्डे सब जलमग्न हो गये और अब सेना बाढ़ से बचाव राहत कार्य कर रही है।पश्चिमी घाट की पेरियार नदी पर बाँध बहुत विचार के बाद बना।इससे निकाली गई 25 किलोमीटर लम्बी नहर सिकुड़ कर मात्र 10 किलोमीटर रह गई है। इससे

जुड़ा दलदली क्षेत्र पहले का एक चौथाई भी नहीं बचा है। 120 एकड़ मे फैली मदु रोवयल झील समय के साथ सिकुड़ कर मात्र 25 एकड़ मे सीमित हो गई है। पल्लिकरनाई दलदली इलाका लगभग समाप्त हो चुका है। इस जल क्षेत्र मे विकास के नाम पर गगनचुम्बी सीमेंट इमारतों का जंगल उगाया गया है। इसमें नया अंतरराष्ट्रीय हवाईअड्डा, बस टर्मिनल, त्वरित जन परिवहन मार्ग, अनेक एक्सप्रेस-वे तथा बाईपास,सेज के अंतर्गत बने मोटरगाड़ी और टेलीकॉम के विशाल भवन और संयंत्रआईटी कॉरीडोर, सत्यम विश्वविद्यालय की इमारतें हैं। चेन्नई प्रशासन इन सीमेंटेड के जंगलों को अपनी उपलब्धि के रूप मे प्रदर्शित करता है। मेक इन चेन्नई के नारों के बीच प्रशासक यह भूल चुके हैं कि उन्होंने निर्माण कार्य प्राकृतिक जलमार्गों के अवशेषों पर करवाया है। 250 किलोमीटर की दलदली जमीन जो कि समुद्र तक जाने का सहज द्वार थी, उसे जबरन सुखा कर उस पर समुद्रीय गतिविधियों तथा जलसमूहों पर शोध रिपोर्ट बनाने को अधिकृत सरकारी नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ ओसेन टेक्नोलॉजी की इमारत बनी जो स्वयं बाढ़ की चपेट में है। तमिलनाडु राज्य की राजधानी मे तथाकथित विकास के नाम पर सबसे अधिक विकास निर्माण कार्य चेन्नई में किया गया है। निर्माण कार्य पुराने जलसंचयन स्थलों और जलमार्गों पर सबसे अधिक हुआ है। जल की अपनी स्मृति होती है, वह पलटकर कभी भी वहाँ आ सकती हैं। बिहार से लेकर उत्तराखण्ड तक में हम नदियों की सूखी धारा पर निर्माण के भयावह परिणाम देख चुके है। यदि जल के स्थान पर थल बना दिया जाय तो जो घटेगा वह अंततः दुखदायी ही होगा। चेन्नई में आई बाढ़ शहरी विकास के नाम पर नदियों के कुदरती बहाव को ताक पर रख देने का नतीजा है। भविष्य में राज्यों को प्राकृतिक आपदाओं से बचने के लिये नदी जलमार्गों और पहाड़ों को संरक्षित करते हुए विकास कार्यों को मंजूरी देनी चाहिये

आलेख

योग-शिक्षा के सरोकार

नीतू सिंह

पिछले वर्ष अंतर राष्ट्रीय योग दिवस को पूरे देश में धूम-धाम से मनाया गया। देश की सरकार ने भी नवीन घोषणाएँ कीं। योग को जन-जन तक पहुंचाया जाये इसको लेकर अनेक निष्ठाएँ अनेक संस्थाओं और विद्वानों द्वारा व्यक्त की गई । किन्तु योग शिक्षा का स्वरूप क्या हो? कौन सी वे चिंताएँ या पहलू हैं जो हमें योग की शिक्षा को लागू करने के समय ध्यान में रखनी होंगी? योग शिक्षा को कैसे वर्तमान शिक्षा पद्धति में समाहित किया जाये? आदि ऐसे अनेक प्रश्न हैं जो मुझे उपलब्ध साहित्य में प्राय: अनुपलब्ध ही दिखाई देते हैं। मैंने योग-शिक्षा संबंधी ट्रेनिंग लेने के बाद इन प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए शिक्षा शास्त्र में ही परास्नातक स्तर की शिक्षा भी प्राप्त की। इसके साथ ही उत्तर प्रदेश के कुछ शहरों जैसे लखनऊ, बहराइच, खलीलाबाद के स्कूलों प्राय: अपने दीर्घकालीन प्रवास की अवधि में और अपने परिसर में स्थित केंद्रीय विद्यालय में विद्यार्थियों को मिशनरी भाव से योग –शिक्षा का अवसर उपलब्ध कराने के लिए अनेक प्रयास किए। मुझे सफलता भी मिली और कुछ समस्याओं से भी मैं दो-चार हुयी। इन सफलताओं और समस्याओं से मुझे योग-शिक्षा के कुछ सरोकारों का भी बोध हुआ; जिसे मैं इस आलेख के माध्यम से आप पाठकों तक पहुंचाना चाहती हूँ। चूंकि योगशिक्षा को लेकर इस समय बड़ी गहमागहमी चल रही है; इस लिए मैंने इसे आपसे साझा करना आवश्यक समझा।

प्रथमतया, मुझे यह बात स्पष्ट हुयी कि अगर योग को रुचिकर तरीके से प्रस्तुत किया जाये, तो बच्चे क्या बड़े सभी इसे अपने जीवन का अंग बनाने को तत्पर हो जाते हैं। मैंने योग को कहानियों के माध्यम से जोड़कर बच्चों के समक्ष प्रस्तुत किया। जैसे वृक्षासन को वृक्षों की दांत कथाओं से काल्पनिक रूप से जोड़ा जिसमें वृक्ष ही पात्र होते हैं और उनके जीवन की कहानियों के द्वारा बच्चों को यह सीख मिली कि वे वृक्षासन करने से क्या लाभ हो सकते हैं। बड़ों को वृक्ष की कल्पना करते हुए वृक्षासन करने के लिए कहा गया। मैंने देखा कि ऐसा करने पर वे भी योगासन करने में अधिक सक्षम हो सके। इससे मुझे यह भी बात स्पष्ट हुयी कि आज के समय में योग-शिक्षा को उपलब्ध कराने के लिए हमें नई तरह की तकनीकों का उपयोग करना करना होगा। सामान्य रूप से योग शिक्षकों के साथ यह समस्या रहती है कि वे थोड़ा अधिक सृजनात्मक होकर शैक्षणिक मनोविज्ञान की अत्याधुनिक तकनीकों का उपयोग नहीं कर पाते हैं। अगर वे ऐसा कर पाएँ तो योग-शिक्षा अधिक आसान हो जाएगी।

दूसरी बात यह है कि योग की शिक्षा प्रदान करने की प्रक्रिया में हमें अपने विद्यार्थियों से मित्रवत व्यवहार करना होगा। उन्हें अपने विश्वास में लेना होगा और उनकी क्षमताओं और संभावनाओं के प्रति भी

उनमें आत्म-विश्वास जागृत करना होगा। उनकी थोड़ी से भी प्रगति पर प्रशंसा और प्रोत्साहन का अवसर देना एक ऐसा मंत्र है जो कि बड़ी आसानी से बच्चों के मन को नियंत्रित कर देता है। पारंपरिक रूप से यह होता रहा है कि योग के शिक्षक तीव्र आलोचक होते हैं; जिसके कारण कई बार विद्यार्थी आत्म-हीनता का भी शिकार बनने लगते हैं। यहाँ मेरे कहने का आशय यह नहीं है कि हम गलतियों को न बताएं। ऐसा अवश्य करें किन्तु उन्हें सिर्फ जागरूक करने और अपनी क्रिया को सही तरह से करने के लिए।

तीसरी महत्वपूर्ण बात मुझे यह प्रतीत हुयी कि अगर योग को सहज शब्दावली में, विशेषकर ऐसी शब्दावली में जो कि उनके लिए लिए रोज़मर्रा की बोलचाल हो, के द्वारा प्रस्तुत किया जाये तो वे योग की विविध बातों को बड़ी आसानी से समझ जाते हैं। क्या अच्छा हो कि ऐसा करते हुए उन्हें विभिन्न धर्मों के पैगंबरों की कहानियाँ भी सुनाएँ। ऐसा करने पर अल्पसंख्यक बच्चों के मन में कोई मलाल नहीं रह जाता है और वे सहजतापूर्वक हरेक क्रिया को सीखते हैं और उसे अपने जीवन का अंग बना लेते हैं।

चौथी बात जो योग के फायदे की समग्रता को लेकर है वह यह है मैंने यह देखा कि वे बच्चे जो योग करते हैं अधिक स्व-नियंत्रित होते हैं, अनुशासन में सहज ही बंधे रहते हैं, उनका मन अधिक एकाग्र होता है, वे प्रत्येक विषय को पढ़ने में अधिक रुचि भी लेने लगते हैं, अध्यापक की बात को अधिक ध्यान से सुनते हैं। किन्तु मुझे यह देखकर दुख भी हुआ और आश्चर्य भी कि उनके माता-पिता तब भी उन्हें योग की तरफ न प्रेरित करके गुणा, जोड़, भाग तक ही सीमित रखना चाहते हैं। उनके अध्यापक भी सामान्य ज्ञान रटाने में ज़ोर देते रहते हैं। किन्तु इस बात पर कोई भी ज़ोर नहीं होता कि वह अपने खान-पान, स्वास्थ्य से संबन्धित ज्ञान भी प्राप्त कर सके। सरकार की भी ऐसी नीतियाँ हैं जो अन्य पाश्चात्य अनुशासनों को ही बढ़ाने और हमारे अपने ज्ञान को शायद दुतकारने में ही लगी रहती हैं। हमारे देश में मेडिकल, इंजीनियरिंग की पढ़ाई के लिए तो बड़े-बड़े संस्थान हैं, किन्तु कितने संस्थान हमारे अपने योग के लिए हैं। हमारे देश का लगभग 90% प्रतिशत से भी अधिक बजट शायद ब्रिटिश सरकार के द्वारा बनाए गए नीति-नियमों को ही पोषित करने में ही व्यय होता है। क्या है हमारे पास? शिक्षा उनकी, स्वास्थ्य की व्यवस्था उनकी, प्रशासन के नियम भी लगभग उन्हीं के चलते हैं। कहाँ है परवाह अपने देशज संस्कृति की या व्यवस्थाओं की? शायद यह हमारे भारतीय मन की अद्भुत स्थिति ही है कि कस्तूरी मृग कुंडलीबसे, मृग ढूँढे वन मांही की स्थिति में पाश्चात्य देशों के द्वारा उपलब्ध कराये गए ज्ञान से ही हम भारतीय अपनी पिपासा मिटाने का प्रयास करते रहते हैं या फिर अनेक वादों में बाँट जाते हैं किन्तु हम पाते हैं वितृष्णा और अनेक ऐसी बुराइया या फिर समस्याएँ जो हमारी संस्कृति में सहज रूप में नहीं हैं।

मैंने एक बात और जो बड़ी ही महत्वपूर्ण रूप से समझी है वह यह है कि योग की शिक्षा को सिर्फ पाश्चात्य प्रक्रिया में ही विभाजित नहीं किया जाना चाहिए जैसे कि हम लोग बी ए और एम ए की पढ़ाई करते हैं और उसकी डिग्रियाँ प्राप्त करते हैं। ऐसी पढ़ाई पाश्चात्य अनुशासनों के लिए उपयुक्त हो सकती है किन्तु योग के लिए नहीं। हमें सर्टिफिकेशन की

व्यवस्था तो अवश्य करनी चाहिए किन्तु योग के शिक्षण को बेजान नहीं बनाना चाहिए।

अगली बात यह है कि हमें योग को वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में ही पढ़ाना चाहिए। ऐसा न हो कि हम योग ऐसे पढ़ाएँ कि हमारे विद्यार्थी अपनी सहज जिंदगी से ही भागने लगें। ऐसा करने पर योग का मूल मकसद जो कि वाह्य और आंतरिक जगत के बीच संतुलन बैठाने का है वह तो पूरा ही नहीं हो पाएगा। बल्कि आज की समस्याओं को ध्यान में रखकर योग को पढ़ायाजाये। इसके लिए आयुर्वेद और मनोविज्ञान से भी मदद ली जाये तो योग का शिक्षण कहीं अधिक समग्र होगा।

सामान्य रूप से मैंने यह देखा है कि लोगों की अभिरुचि बड़े-बड़े बोझिल सिद्धांतों की ऊहापोह में नहीं है बल्कि वे सहज रूप से योग को समझना और अपनाना चाहते हैं।

ये कुछ बिन्दु थे जो मुझे महत्वपूर्ण लगे। योग शिक्षा फैले और जन-जन को प्रकाश दे ऐसी अभ्यर्थना हम सभी करें।

योग प्रशिक्षिका, सावित्री बाई फुले छात्रावास
म. गाँ. अं. हिं. वि. वि. वर्धा

रेणु कुमारी

तुमने ये क्या किया ?

सूरज ने अपनी धूप दी
धरती ने अपनी मिट्टी
वर्षा ने अपनी बूंदें
और हवा ने सांसें
और मैं लहलहाया खेतों में
लहलहाया , इतराया , डालियों पर
किसानों ने थपकाया
किसान स्त्रियों ने पुचकारा और दुलारा मेरी बालियों को
और मैं जम कर बन गया अन्न का दाना
सिर्फ अन्न का दाना मत कहो
कईयों का दुलार हूँ मैं
मुझमें धरती है
मुझमें आकाश है
मुझमें वर्षा की बूंदें हैं
मुझमें सूरज का ताप है
कईयों ने अपना - अपना बहुत कुछ दिया है
और इस किसान ने अपना सर्वस्व दिया है
रात-रात भर जाग कर रखवाली की है
ठिठुरती ठंढ में काँपता रहा रात भर
स्त्रियाँ ,उनकी बेटियाँ अपने विरुद्ध यौन हिंसित समय मे भी
हिम्मत के साथ खड़ी रही हैं हमे सींचने के लिए
तब जा कर बना हूँ अन्न का दाना
कितना कीमती हूँ मै !
कितना दुलारा !
है कोई इतना दुलारा?
पर तुमने ये क्या किया?
हमें गोदामों मे सड़ा दिया ?
और गोदामों से बाहर भी ....?

शोधार्थी , स्त्री अध्ययन
महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

वैभव कुमार

एक तस्वीर बचपन की

कभी इस कांधे पर
तो कभी उस कांधे पर
सावन आए तो
आँगन के झूलों पर
तितलियों को पकड़ना
कभी गुड्डे-गुड़ियों से लड़ना
अक्सर लुका-छिपी के खेल में
आड़े-तिरछे चलना
सिर्फ हँसना और मुस्कराना
उस दौर में ग़म नाम की कोई चीज ही नहीं थी
बस डर था तो उस झोली वाले बाबा का
टिमटिमटाते तारों के उस पार
एक शहर हुआ करता था
जिसकी कहानियाँ हम कभी दादी कभी नानी से सुनते थे
सबकुछ आज उस तस्वीर में फिर देखा मैंने
जिसमें सुदबुदाते हुए
आँखों के काजल को फैलाया है मैंने।

—

एम बी ए प्रबंधन विद्यापीठ

कविताएँ

वेद भूषण

हिंदी भारत मां की बिंदी

हिंदी भारत मां की बिंदी,
हिंदी हिंदुस्तान।
विश्व कवि, हुलसी सुत तुलसी,
जिनका है गुणगान।
हिंदी भाषा विश्व की भाषा,
मानस ग्रंथ महान।
हिंदी तनुजा संस्कृत की,
जनजन को है ज्ञान।-
मॉरीशस मंदाकिनी हिंदी,
धारा बहे महान।
राष्ट्र कवि मैथिलीशरण का,
जनजन का आह्वान ।-
भाषालंकृत समीचीन है,
जग में हिंदी ज्ञान।
हिंदी भाषा सरस, सरल है,
विश्वभाषा महान।
हिंदी भारत मां की बिंदी,
हिंदी हिंदुस्तान।

महात्मा

बापू हैं आदर्श विश्व के
राष्ट्रपिता कहलाए।
सत्य, अहिंसा और प्रेम का
जग को पाठ पढ़ाया।
सत्याग्रह को सफलता का
मूल मंत्र बताया।
अपने आदर्शों से जग को
नतमस्तक करवाया।
हुए प्रभावित कवि रवींद्र
तब नाम महात्मा पाया।
है शक्तिवान अदृश्यवान
आशा हैं जनजन की।-
समृद्धि पथगामी प्रेरक
गांधी हैं जन जीवन के।
जिसने भी गांधी को जाना
वह भक्त बना दीवाना।
दी आजादी हमें प्रेम से
त्याग और बलिदान की।
नतमस्तक हैं प्राणी जग के
बापू के स्वाभिमान की।
परिकल्पित थे प्यारे बापू
हो आदर्श गांव भारत का।
मिले वस्त्र, स्वच्छ निर्मलजल-
आवासहीन न कोई जन हों।
संकल्पित हो मानव जीवन
रोगमुक्त जनजीवन हो।-
इच्छा शक्ति हो प्रबल
मानवता का हो विकास ।

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के 18 वें स्थापना दिवस समारोह के अवसर पर 'स्वरचित कविता-पाठ प्रतियोगिता' का आयोजन किया गया। इस प्रतियोगिता में विश्वविद्यालय के 46 विद्यार्थियों ने भागीदारी की। इस प्रतियोगिता के संयोजक श्री प्रदीप त्रिपाठी थे । प्रतियोगिता में पुरस्कृत कविताएं को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है -

वे दिन...

हृदय की गहराई से
जोड़े रखने की चाहत
तड़फड़ाती है
अधझुलसे पतंगे की तरह.
पिघला जाता है समय का मोम
प्रेम की गरमाहट नहीं,
ठंडेपन से.
उदास सांझ की कालिमा सी
गहराती जाती है
उथले सुख को प्रश्रय देने का
उसका भाव.
निश्छलता की कटार से कटती है
प्रेम की बेल क्या?
भारी होता है तुलादंड पर
व्यवहार, समर्पण से?
या फिर श्वान को
पचता नहीं है घी?
सोच कर हारा,
बंद कमरे में
दीवार से सिर टकराता
चिर अवसादित-सा मन,
चाहता है लौट आते
फिर से वे दिन...

—कृष्ण मोहन
प्रदर्शनकारी कला विभाग

कविताएँ

शाना ब शाना तेरे साथ सो जाएँ हम
शादाँ सफ़र में चल कहीं खो जाएँ हम
शायरी लिखें डुबो के नज़र हुस्न में
भभके सियाही जज़्बात रो जाएँ हम

साँसों और लफ़्जों की फ़िकर छोड़कर चलो
दिल से कहें सुने कि दिल हो जाएँ हम

पंखुड़ी के सीपों पे रही मेरी बेकली
मोतियाँ मिलन के तब पिरो जाएँ हम
पढ़ती रही शिकायतनामा सनम आज
रात शिकायत सब धो जाएँ हम

थोड़ा जिएँ थोड़ा पी लें लम्हात ये
और थोड़ा यादों में साजो जाएँ हम

नीतीश कुमार भारद्वाज
प्रदर्शनकारी कला विभाग

कविताएँ

भाग 1

मैं हूँ जली हुई
निहायती आशावादी खाखनुमा लाश.....

ढूंढ रही हूँ
कुछ बचा हुआ....

शरीर का कोई पुर्जा

आँखें
कि देख पाऊँ अपनी निर्मम हत्या के बाद
कितना और क्या परिवर्तित हुआ है...?

और अगर ना हुआ तो....
ढूंढ रही हूँ
हाथ
दोनों पाव
जबान
कि
जरूरत पड़ने पर चलाई जा सके

जिन्हें बांध दिया गया था
जब सजीव थी !!

खोज रही हूँ
दफनाया गया मेरा आत्मसम्मान!
शायद मिल जाए कहीं
खोजते-खोजते....!

आ पहुंची हूँ

ऐसी जगह
जहां
साबुत आंखो और हाथपैरों वाली
मरी हुई आत्माएँ रहती है...
यह वहीं जगह है
जहां मैं भी तो रहती थी!
जी हाँ
यह वहीं जगह है

जिसे हम समाज के नाम से जानते है....

भाग 2

मैं कविता हूँ....
बिना शीर्षक की....
...लोग कहते है
जैसे बेवा !!

मैं कविता हूँ
जिसकी बाहँ थामने को अधीर है यह शीर्षक
कहता है...
कविताओं की भीड़ में
तुम कहीं खो न जाओ...
वह समझता है
बिना शीर्षक की कविता
कोई पढ़ना नहीं चाहता

यह शीर्षक होता कौन है
जो बाप भाई या पति बन रहा है मेरा
जो 'मेरी' पहचान कराता है,
क्या वह नहीं जानता
मैं कविता हूँ

जिसका वह सार है....
उसका अपना अस्तित्व मुझसे है...
उसकी अपनी पहचान मुझसे है.....

मैं कविता हूँ....
सब मुझे पढेंगे......
मैं ही तो समेटे बैठी हूँ अपने में
अनुभूति के क्षण
गहरी पीड़ा
आनंद
और
लय जीवन सी

मैं कविता हूँ....!!
अपने में संपूर्ण
और तुम हो..
केवल एक शीर्षक !!
तुम जन्म लेते हो मुझसे
मैं नहीं तो तुम नहीं.....
पर तुम नहीं
तब भी मैं हूँ.... और रहूंगी.....
बिना शीर्षक...
...भले ही
जैसे बेवा.....

भाग 3

मैं औरत हूँ....
मैं वह आग हूँ...
जिसे माँ गर्भ में तो धर पाई
पर तुम नहीं दबा पाओगे...
न तुम्हारा यह समाज
न यह सडी-गली परंपराएँ और न यह
रीति-रिवाजों का ढकोसला

जिसके संरक्षण में तुम पले-बढ़े
और 'मर्द' बने

मुझे किसी बंधी-बंधाई
दिनचर्या के अनुरूप ढालने के लिए
कहा से लाओगे टकसाल?

मेरे मस्तिष्क में उठती आग लपटों को
जितना बुझाने की कोशिश करोगे
साम-दाम-दंड-भेद से...
यकीन मानो...
जल जाओगे.....
और तुम्हारे जलने से
मुझ जैसे कई और अंदर से दधगते
कोयलों के उपरी राख़ की परत हट कर
आग भड़केगी
और भस्म कर देगी तुम जैसों को
और तुम्हारे संरक्षक
इस समाज को...
फिर....
तुम्हारे शवों के मलबे को हटा कर..
एक नया समाज निर्माण करेगी.....

मेघा आचार्य
पीएच.डी. शोधार्थी (अनुवाद प्रौद्योगिकी)

कविताएं

मैं फुटपाथ हूँ

मैं फुटपाथ हूँ
रोड के किनारे अनजाने लक्ष की ओर
बेसुध पड़ा, मैं फुटपाथ हूँ
देखता हूँ पास ही में, बसती है एक दुनियां
जो बेमन, मुझसे होकर गुजरती है
एक दुनिया है जो हर रात,
मेरे सीने पर ठिठुरती है
मैं करता हूँ बस और बस इनसे प्रेम,
जो रोज़ अपने सपने टांग देते हैं
लंबे बेजान खम्बों पर और करते हैं हम रात भर बातें
मेरे भीतर से गुजरती है रक्त की तरह
तुम्हारी समाज से निकली गंध
जो हर बरसात में मुझे लीन लेती है
और दूर हो जाता है मुझसे मेरा प्रेम
वह किसी पुराने ठूंठ के नीचे
गुजारता है रातें, बीनता है भूख
उसकी देह पर स्वर्णिम इतिहास की कतरन है
समाज की छोड़ी गई लाचारी और बेबसी को
देखता हूँ बहते हुए इनकी आँखों से
कुछ समय की मुठभेड़ के बाद
लौट आता है मेरे पास
और हम फिर रोज़ की तरह
बाँटते है हाशिए का प्रेम
और फिर,
एक दूसरे से चिपक सो जाते हैं

कुमार गौरव
प्रदर्शनकारी कला विभाग

क्योंकि मैं एक औरत हूँ

मैं औरत हूँ, हव्वा की बेटी आसमान से भेजी गई नूर की वो पाक मुकदस
बूंद जो सदियों से इस सरजमीं को सिंचती चली आई |
मैंने ही प्यार के रंग बिरंगे फूल खिलाकर इस दुनिया को जन्नत बनाया |
मैंने ही अपनी कोख से बच्चे को जन्म दिया,माँ बनकर उसे खिलाया,पाला,पाँव पर
चलना सिखाया, तो बहन बनकर उसके बालकपन को चुलबुली कहानियाँ दी |
महबूबा बनकर उसकी जिन्दगी को रेशम नगमों में ढाला और अपनी जवानी के अनमोल मोती लुटाकर उसके रात और दिन सजाये |
मैंने ही वक्त पड़ने पर कंधे से कंधा और कदम से कदम मिलाकर कटीली राहों में दोस्त बनकर उसका साथ दिया,और ये सब करते हुए अपना बजूद खोकर मैं औरत नूर की वो बूँद मर्द में पूरी की पूरी समा गई ,
मेरी इस बेमिसाल कुर्बानी की कहानी को हर मजहब ने सुनहरे अल्फाज में लिखा,मुझे अजमत की उन बुलंदियों पर बैठा दिया जहाँ पहुँचकर इंसान खुदा हो जाता हैं
शाम में किसी दोस्त ने सुनाई थी यह व्यथा,इतनी उदास और दु :ख भरी
इतना बेदर्द हो सकता हैं क्या इंसान,बार– बार मैं यही सोचती हूँ,मासूम सी जिन्दगी फूलो पर,
ये पापियों के कांटे न जाने कहाँ से आ गए,खेलती हुई जिन्दगी को उजाड़ने में लगे हैंसहसा सोच का ये खेल हैं आदमी आदमी को काटने लगा हैं प्यार भूल गया हैं,
लेकिन ये हकीकत नहीं भ्रम था जिसके टूटते ही आज सदिया बीत जाने तक हर लम्हा मुझे यही डर सताये रहता है कि ना जाने
कब अपनी ऊँचाई से मैं गिरा दी जाऊं
कब किसी कोठे पर धकेल दी जाऊं |
कब जुऐ में दाँव पर लगा दी जाऊं |
कब अपनी पाकीजगी का सबूत देने के लिए मुझे शोलो में झुलसना पड़े
कब मैं जन्म देते ही मार डाली जाऊं
कब हवस के बाजार में नीलाम कर दी जाऊं
कब निकाह करके अपनाई जाऊं तो तलाक देकर ठुकराई जाऊं और
कब मेरी अस्मत का रखवाला मर्द अपने ही हाथों मुझेबेअबरू कर डाले |
क्योंकि मैं एक औरत हूँ |

- कु.नेहा नेमा
शोधार्थी(हिन्दी साहित्य)

साहित्य के अथाह सागर में

साहित्य के अथाह सागर में
डुबकी लगाना चाहता हूं,
डुबे हुए बहुमूल्य शब्द चुन
हिन्दी को बचाना चाहता हूं ।

आज जरूरत है मेहनत की
जो बना दे लोहे को सोना
भोतरे शब्द तपा-तपा कर
बना दे जो बहुमूल्य हीरा

फिर लेकर मैं हथौड़ा
अक्षरों को पीटना चाहता हूं,
डुबे हुए बहुमूल्य शब्द चुन
हिन्दी को बचाना चाहता हूं ।

तपाकर कूट-कूट षब्दों को
दूंगा फिर से आकार मैं

सुन्दर रेशमी धागे में पिरोकर
बना दूंगा गले का हार मैं

फिर हिन्दी साहित्य में मैं
वो चमक लाना चाहता हूं,
डुबे हुए बहुमूल्य शब्द चुन
हिन्दी को बचाना चाहता हूं ।

इन शब्दों का हार बनाकर
दुनिया के गले सजाऊंगा
नित देखूं नित उजला होए
ऐसा मैं हार बनाऊंगा

दुनिया पहने मेरे हार को
बस यही मैं चाहता हूं,
डुबे हुए बहुमूल्य शब्द चुन
हिन्दी को बचाना चाहता हूं ।

हमारा जीवन

ओंस की कुछ बूंदे ज्यों
मोती बन चमकने लगती हैं,
घास की चंद शिखाओं पर
वैसे ही बने ये जीवन हमारा।
जिसका काल है क्षण-भंगूर
ज्यों ओंस का जीवन ही
कुछ क्षणों का होता है।
सूर्य की पहली किरण से
खिल उठती है चमक उठती है
ओर घास पर थिरकने लगती है।
मगर उसके विनाश का कारण भी
वही सूर्य होता है
कुछ पहर में ही वह
उड़ा देता है भाप बनाकर
खुद मिटकर भी वह ओंस
एक सीख दे जाती है
जीवन अमूल्य है उसको हे मानव
यूं मत निरर्थक गवां
तु भी कुछ ऐसा कर
तेरी भी चमक मोती-सी हो
उसमें अपनी साख बना
हर क्षण आतुर रह
मौत को गले लगाने को
क्योंकि यह जीवन छोटा है
पर समय अमूल्य है
इसको ऐसे बेकार न कर
हे मानव ! तु भी कुछ कर।

नवल पाल प्रभाकर,
गांव व डाकघर-साल्हावास
जिला-झज्जर

गतिविधियां

विश्वविद्यालय के 18वें स्थापना दिवस की कुछ झलकियां

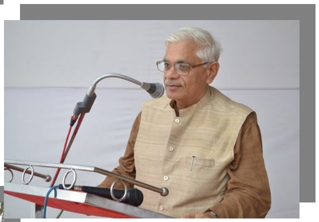

रचनाकार

अरूणेश नीरन	neeranarunesh48@gmail.com
सूर्यनारायण रणसुभे	निकष, 19 अजिंक्य विला, अजिंक्य सिटी, अंबाजोगाई रोड, लातूर -413512
उल्लास जाजू	unjajoo@mgims.ac.in
अनिल कुमार पाण्डेय	pandey_anilkumar61@rediffmail.com
दीपमाला	awasthi1905@gmail.com
नीतू सिंह	jyotiarun13@gmail.com
रेणु कुमारी	kumariren@gmail.com
वैभव कुमार	jaikatiyar20@gmail.com
वेद भूषण	vbtripathi001@yahoo.com
कृष्ण मोहन	krishnmohan.lal@gmail.com
नीतीश कुमार भारद्वाज	bhardwajaryavarta@gmail.com
मेघा आचार्य	acharyamegha20@gmail.com
नेहा नेमा	neha645835@gmail.com
नवलपाल प्रभाकर	navalpaal85@gmail.com
प्रदीप त्रिपाठी	tripathi.pradip75@gmail.com

shambhujoshi@gmail.com

gcpandey@gmail.com

यह प्रयास

हमें हार्दिक प्रसन्नता है कि विश्वविद्यालय की ई-पत्रिका निमित्त को ISSN नं. प्राप्त हुआ है। यह हम सभी के समन्वित प्रयासों का प्रतिफल है। आशा है कि आप सभी का सहयोग पूर्व की भाँति प्राप्त होता रहेगा। विश्वविद्यालय प्रशासन ने निरंतर रुचि ली और हमें प्रोत्साहन दिया उनके प्रति हार्दिक आभार।

सृजन रस की यह धारा सतत बहती रहे और हम सब इसका आनंद लेते रहे हैं इस आकांक्षा के साथ फिर मिलेंगे।

शंभू जोशी, गिरीश चंद्र पाण्डेय